

कार्तिक माहात्म्यम्

(कार्तिक मास व्रत कथा)

भाषा टीका सहितम्

कृष्णानन्द शास्त्री

भारतीय संस्कृत भवन
जालन्धर शहर

पद्मपुराणोक्त

कार्तिक माहात्म्यम्

(भाषा टीका सहितम्)

टीकाकार एवं सम्पादक :

कृष्णानन्द शास्त्री

भारतीय संस्कृत भवन

माई हीरां गेट, जालन्धर शहर–8

प्रकाशक–
भारतीय संस्कृत भवन
माई हीरां गेट, जालन्धर–144008
दूरभाष : 0181–2212532

प्रथम संस्करण
सम्वत् २०६० बसन्त पंचमी
मूल्य : साठ रुपए मात्र

कम्पोजिंग :
सी.के. ग्राफिक्स
मिट्ठा बाजार, जालन्धर शहर
दूरभाष : 2291285

मुद्रक :
सरताज प्रिंटिंग प्रैस
जालन्धर शहर

भूमिका

कार्तिक मास वर्ष का महत्त्वपूर्ण पुण्यदायी मास है। आश्विन मास शुक्ल पक्ष एकादशी को दामोदर मास का आरम्भ होता है। यह पवित्र मास होने से भगवान् नारायण का दामोदर नाम से पूजन होना चाहिये। महासती वृन्दादेवी के मन्दिर में एक मास तक सायं दीपदान करना चाहिए। महासती वृन्दा का ही दूसरा रूप तुलसी है। सायंकाल तुलसी वाटिका में दीप दान करें, तुलसी की परिक्रमा करें। तुलसी पत्र से दामोदर भगवान् का पूजन करें, भगवान् के समक्ष भोजन रखते हुए भी तुलसी पत्र रखना चाहिये। विष्णु भगवान् को तुलसी अत्यधिक प्रिय है। वृन्दा की महिमा, तुलसी की महिमा अपार है। **ॐ वृन्दायै तुलसी देव्यै प्रियायै केशवस्य च। विष्णु भक्ति प्रदे देवि सत्यवत्यै नमो नमः॥** इस मन्त्र को पढ़ते हुए प्रणाम करें।

इस मास में नगर परिक्रमा का भी बहुत महत्त्व है। जन-जन में भक्ति की लहर उत्पन्न होती है। परिक्रमा करने वाला व्यक्ति पुण्य का भागी बनता है। कार्तिक शुक्ल एकादशी का दिन भगवान् विष्णु के निमित्त जागरण करते हैं। प्रातःकाल भगवती राधा को शयन से उठाकर भगवान् जगन्नाथ को उठाना चाहिये। उस समय भिन्न-भिन्न प्रकार के वाद्य यन्त्रों को बजाना चाहिये। पूर्ण विधि से प्रभु का अर्चन करें। संकीर्तन तथा नर्तन से प्रभु प्रसन्न होते हैं। महान् उत्सव का आयोजन करना चाहिए।

इसी एकादशी के दिन से पंचभीष्म एकादशियों का आरम्भ होता है। ये पांच दिन महत्त्वपूर्ण हैं। इन दिनों आमलक पूजन किया जाता है, आमलक के नीचे भोजन करने का विधान है। इन दिनों भगवती तुलसी का शालग्राम से विवाह करने का भी माहात्म्य है। बहुत धर्मप्रिय लोग पूरे विधान से शालग्राम को सुसज्जित पालकी में बिठाकर बाजे के साथ तुलसी विवाह के लिए बारात लेकर प्रस्थान करते हैं। मण्डप बनाकर पूर्ण विधि से विवाह कार्य सम्पन्न करते हैं। इसके लिए हमारे द्वारा प्रकाशित **''तुलसी विवाह विधि''** का आश्रय लें। पूर्णिमा के दिन नदी तालाब बावड़ी आदि में स्नान का माहात्म्य है। प्रातःकाल दीप दान का माहात्म्य है। ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्यों के कारण ही इस दामोदर मास का विशेष महत्त्व है।

त्रिगर्त प्रदेश जालन्धर का पुरातन ऐतिहासिक मन्दिर उत्तरी भारत का एकाकी वृन्दादेवी का मन्दिर है। पद्म पुराण में इस मन्दिर के विषय में विस्तार से वर्णन किया गया है। वैष्णव सम्प्रदाय के लोग इस महासती वृन्दा मन्दिर में सर्वप्रथम अर्चन करके ही दामोदर मास का आरम्भ करते हैं। पूरे मास में हज़ारों की संख्या में दूर-दूर से जनता आकर महासती वृन्दा का पूजन करती हैं। इसी वृन्दा देवी के कारण ही कार्तिक मास का महत्त्व है।

इन हज़ारों वर्ष पुरातन मन्दिर के इतिहास के विषय में हमारे द्वारा प्रकाशित **"त्रिगर्त प्रदेश जालन्धर" ऐतिहासिक धार्मिक एवं सामाजिक** पुस्तक से महत्त्वपूर्ण वर्णन की जानकारी ले सकतें हैं।

नियम

धर्मानुयायियों के लिये स्नान व्रत आदि का विधान पुराणों में तथा अन्यान्य धर्मग्रन्थों में प्राचीन ऋषियों द्वारा बताया गया है। उसी में कार्तिक मास में स्नान-व्रतादि के विधान को महत्त्व दिया गया है। कार्तिक मास में जितने भी पुण्य कार्य किये जाएं थोड़े ही हैं, फिर भी इस मास में प्रातः स्नान का महत्त्व अत्यधिक है। पद्मपुराण तथा विष्णु रहस्य में भी कहा है-

(क) आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी से कार्तिक व्रत को आरम्भ करना चाहिए। यह दामोदर व्रत का सर्वश्रेष्ठ दिन है।

(ख) आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी से प्रारम्भ करके कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा के दिन व्रत की समाप्ति करें।

(ग) कार्तिक मास का पूरा समय प्रातःकाल नियमपूर्वक स्नान करके विष्णु पूजन आदि करना चाहिये।

कार्तिक मास में स्नान-व्रत-जप आदि अवश्य करने चाहियें ऐसा मदनपारिजात में लिखा है।

(घ) कार्तिक मास में कहां-कहां किस-किस तीर्थ में स्नान करने का अधिकाधिक महत्त्व है, उसे भी पद्मपुराण में कहा है। यथा-

कुरुक्षेत्रे कोटिगुणो गङ्गायामपि तत्समः। ततोऽधिकः पुष्करे स्याद् द्वारवत्यां च भार्गव॥
पुण्या पुर्यश्च सप्तैव मुनयो मथुराधिका। दुर्लभः कार्तिको विप्राः मथुरायां नृणामिह॥
यत्रार्चितः स्वकं रूपं भक्तेभ्यः सम्प्रयच्छति॥

विशिष्ट रूप से काशी में ही कार्तिक स्नान का अधिक महत्त्व है। इसकी पुष्टि काशीखंड से ज्ञात होती है-

शतं समास्तपस्तप्त्वा कृते यत् प्राप्यते फलम्। तत् कार्तिके पञ्चनदे सकृत्स्नानेन लभ्यते॥
कार्तिके बिन्दुतीर्थे यो ब्रह्मचर्यपरायणः। स्नास्यत्यनुदिने भानौ भानुजात्तस्य भीः कुतः॥

कार्तिक स्नान नियमपूर्वक करने वाले व्यक्ति को नीचे लिखे मन्त्र का उच्चारण करके स्नान करना चाहिए-

स्नान का मन्त्र-

"कार्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातः स्नानं जनार्दन। प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह॥
इमं मन्त्रं समुच्चार्य मौनी स्नायात् व्रती नरः॥"

स्नान के बाद पूर्वाभिमुख होकर निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करके अर्घ्य-प्रदान करना चाहिये-

अर्घ्य-प्रदान का मन्त्र-

"व्रतिनः कार्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं दनुजेन्द्रनिषूदन॥
नित्ये-नैमित्तिके कृष्णो कार्तिके पापनाशने। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे॥
इमौ मन्त्रौ समुच्चार्य योऽर्घ्यं मह्यं प्रयच्छति। सुवर्णरत्नपुष्पाम्बुपूर्णशङ्खेन पुण्यवान्॥
सुवर्णपूर्णा पृथिवी तेन दत्ता न संशयः॥"

कार्तिक मास में प्रतिदिन स्नान करने का विशेष महत्त्व है। यदि संपूर्ण मास स्नान न सकते हों तो शुक्लपक्ष की त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा पौर्णमासी को स्नान करने से भी संपूर्ण कार्तिक स्नान का फल प्राप्त होता है।

कार्तिक मास में केवल स्नान मात्र से पुण्य प्राप्ति होती ही है फिर भी त्याज्य वस्तुओं का त्याग करने से विशिष्ट प्रकार की पुण्य-प्राप्ति होगी ऐसा भी पुराणों में लिखा है।

कार्तिक में निषिद्ध वस्तु-

कार्तिके वर्जयेत्तैलं कार्तिके वर्जयेन्मधु। कार्तिके वर्जयेत् कांस्यं कार्तिके शुक्त-संधितम्॥
कार्तिके वर्जयेत्तद्वत् द्विदलं बहुबीजकम्। माषमुद्गमसूराश्च शणकाश्च कुलित्थकाः॥
निष्पावा राजमाषाश्च आढक्यो द्विदलं स्मृतम्। नूतनान्यपि जीर्णानि सर्वाण्येतानि वर्जयेत्॥
राजिकामाढकं चैव नैवाद्यात् कार्तिकव्रती। द्विदलं तिलतैलं च तथान्यमतिदूषितम्॥
ऊर्ज्जे यवान्नमश्नीयाद्देवान्नमथवा पुनः। वृन्ताकं सूरणं चैव शूकशिम्बीश्च वर्जयेत्॥

इसी तरह ग्राह्य वस्तुओं का भी उल्लेख यत्र-तत्र पुराणों में मिलता है। यथा-

कार्तिक मास में ग्रहण करने योग्य वस्तु-

व्रीहयो यवगोधूमाः प्रियङ्गुतिलशालयः। एते हि सात्त्विकाः प्रोक्ताः स्वर्गमोक्षफलप्रदाः॥

कार्तिक मास में विधि-निषेध रूप से कुछ आवश्यक बातें जो पुराणों में उपलब्ध हैं, वे इस प्रकार हैं-

(१) लहसुन, प्याज, तेल, शहद आदि मादक वस्तुओं का सर्वथा त्याग करें।

(२) यों तो संपूर्ण मास प्रातः स्नान करने का विधान है। यदि वह न हो सके तो शुक्ल पक्ष १३, १४ और पौर्णमासी को अवश्य ही स्नान करें।

(३) कार्तिक मास में हविष्यान्न (जौं अथवा गेहूं) तथा हरी-हरी साग का ही भोजन करे। यदि सामर्थ्य हो तो एक ही बार भोजन करे।

(४) कार्तिक मास में आंवला और तुलसी विष्णु भगवान को अर्पण करने का विशेषरूप से निर्देश है अतः आंवले व तुलसी की माला भगवान श्री राधा-दामोदर को पहिनावे।

(५) कार्तिक मास में आकाशदीप नित्य शाम को जगाना चाहिए और तांबे की दियली में धूप-दीप जलाकर अन्न-वस्त्र, फल-दक्षिणा आदि से युक्त ब्राह्मण को दीप-दान देना चाहिए। इससे स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

(६) यदि किसी को मन्त्र दीक्षा लेनी हो तो गुरु का सम्मानपूर्वक पूजनादि करके गुरु से दीक्षा लेना इस मास का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है।

(७) कार्तिक मास में नीचे लिखे विशिष्ट पर्वों के दिन उस-उस विधान से पूजन-व्रतादि करने चाहिएं- धनत्रयोदशी, नरकचतुर्दशी (हनुमत्पूजन), दीपावली (लक्ष्मीपूजन), यमपूजन तथा भगिनी गृह-भोजन, भीष्म-पंचकव्रत, विष्णुप्रबोधोत्सव तथा तुलसीविवाह, वैकुण्ठचतुर्दशी।

(८) कार्तिक में प्रायः स्नान करने के पूर्व मौन रहे।

(९) कार्तिक मास में जो भी व्रत किये जाएं उसका उद्यापन अवश्य ही करे। उद्यापन करने से व्रतों का संपूर्ण फल प्राप्त होता है। उद्यापन के लिए किसी योग्य ब्राह्मण से विचार-विनिमय कर उद्यापन करे।

तुलसी प्रणाम- वृन्दायै तुलसी देव्ये प्रियायै केशवस्य च। कृष्ण भक्तिप्रिये देवि सत्यवत्यै नमो नमः॥

तुलसी प्रदक्षिणा- यानि कानि च पापानि ब्रह्म हत्यादि कानि च। तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिणः पदे पदे॥

तुलसी प्रार्थना- नमो नमः तुलसी। कृष्णप्रेयसी। राधाकृष्ण सेवापाबो एह अभिलाषी॥१॥
जो तोमार शरणलय तार वाञ्छा पूर्णहय। कृपा करि, करो तारे वृन्दावनवासी॥२॥

मोर एहि अलिबाष विलास कुंजे दिओ वास। नयने हेरिव सदा जुगल-रूप-राशि ॥३ ॥
एहे निवेदनधार, सखीर अनुगत करो। सेवा अधिकार दिये करो निजदासी ॥४ ॥
दीन कृष्णदासे कय एइयेन मोरहय। श्रीराधा गोविन्द प्रेमे सदा येन भासि ॥५ ॥

श्रीनामकीर्तन

यशोमति नन्दन ब्रजवर नागर गोकुल रंजन कान्। गोपी पराण धन, मदनमनोहर कालियदमन विधान ॥१ ॥
अमल हरि नाम अनिय विलासा विपिन पुरन्दर, नवीन नागर वार, वंशीवदन सुवासा ॥२ ॥
ब्रज जनपालन असुरकुल नाशन नन्द गोधन रखवाला। गोविन्द माधव नवनीत तस्कर सुन्दर नन्द गोपाला ॥३ ॥
जमुना-तट-चर, गोपी वसन हर, रास रसिक कृपामय श्री राधा वल्लभ वृन्दावन नटवर भक्ति विनोद आश्रय ॥४ ॥

आरती तुलसी जी

नमो नमः तुलसी महारानी नमो नमः। नमोरे नमोरे मैया नमो नारायणी नमो नमः॥
जाको दरशे परशे अघनाशी महिमा वेद पुराण वखानी॥ नमो नमः तुलसी ....
जाको पत्रमंजरी कोमल श्रीपति मंजरी कोमल लपटानी॥ नमो नमः तुलसी ....
धन्य तुलसी पूरण तप कियो श्री शालग्राम महापटरानी॥ नमो नमः तुलसी ....
धूप दीप नैवेद्य आरती फूलन किये वरषा वरषानी॥ नमो नमः तुलसी ....
छप्पन भोग छत्तीस व्यंजन। विना तुलसी प्रभु एक नाही मानी॥ नमो नमः तुलसी ....
शिव शुक नारद और ब्रह्मादिक। ढूंढत फिरत महामुनिज्ञानी॥ नमो नमः तुलसी ....
शेखर मैया तेरे यश गावे। भक्तिदान दीजिये महारानी॥ नमो नमः तुलसी ....
नमो नमः तुलसी महारानी नमो नमः। नमोरे नमोरे मैया नमो नारायणी नमो नमः॥

प्रथम अध्याय

सूत उवाच—श्रियः पतिमथामन्त्र्य गते देवर्षिसत्तमे। हर्षोत्फुल्लानना सत्या वासुदेवं तदाऽब्रवीत् ॥१ ॥ सत्योवाच—धन्याऽस्मि कृतकृत्यास्मि सफलं जीवितं मम। मज्जन्मनि निदाने च धन्यौ तौ पितरौ मम ॥२ ॥ यौ मां त्रैलोक्यसुभगां जनयामासतुर्ध्रुवम्। षोडशस्त्रीसहस्त्राणां वल्लभाऽहं यतस्तव ॥३ ॥ यस्मान्मयाऽऽदिपुरुषः कल्प-वृक्षसमन्वितः। यथोक्तविधिना सम्यङ्नारदाय समर्पितः ॥४ ॥ यद्वार्तामपि जानन्ति

सूतजी ने कहा—जब देवर्षिश्रेष्ठ श्री नारद श्रीकृष्ण चन्द्र जी से मन्त्रणा करके चले गये, तब हर्ष से गद्गद होकर सत्यभामा ने अपने पति श्रीकृष्ण चन्द्र जी से कहा ॥१ ॥ हे स्वामिन्! मैं धन्य हूं, मेरा जीवन सफल तथा धन्य है, मैं अपने को कृतकृत्य समझती हूं, मेरे जन्मदाता वे माता-पिता भी धन्य हैं ॥२ ॥ क्योंकि उन्होंने निःसन्देह त्रैलोक्यसुन्दरी मुझ सत्यभामा को जन्म दिया है। इस सुन्दरता का ही प्रभाव है कि आपकी सोलह हज़ार स्त्रियों के रहते हुए भी मैं आपको विशेष रूप से प्रिय हूं ॥३ ॥ केवल इसी के लिये मैंने कल्पवृक्ष के नीचे आदिपुरुष आपको विधिपूर्वक संकल्प

भूमिसंस्था न जन्तवः । सोऽयं कल्पद्रुमो गेहे सदा तिष्ठति चाङ्गणे ॥५ ॥ त्रैलोक्याधिपतेश्चाहं श्रीपतेरतिवल्लभा । अतोऽहं प्रष्टुमिच्छामि किञ्चित्त्वां मधुसूदन ॥६ ॥ यदि त्वं मत्प्रियकरः कथयस्वात्र विस्तरम् । श्रुत्वा तच्च पुनश्चाहं करोमि हितमात्मनः ॥७ ॥ यथाऽऽकल्पं त्वया देव वियुक्ता स्यां न कर्हिचित् । सूत उवाच—इति प्रियावचः श्रुत्वा स्मेरास्यस्तु बलानुजः ॥८ ॥ सत्याकरं करे धृत्वाऽगमत्कल्पतरोस्तलम् । निषिध्या-

कर नारद के लिए उस समय समर्पित कर दिया था ॥४॥ जब संसार के लोग कल्पवृक्ष का नाम तक नहीं जानते थे, वही कल्पवृक्ष मेरे आंगन में लगा हुआ है ॥५ ॥ हे मधुसूदन ! तीनों लोक के स्वामी भगवान् लक्ष्मीपति की मैं अतिशय प्रियतमा हूं, इसलिये मैं आपसे कुछ पूछने की इच्छा करती हूं । ॥६ ॥ यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो मेरे प्रश्न का उत्तर विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये, जिसे सुनकर मैं अपना कल्याण करूं ॥७ ॥ (मुझे वह उपाय बताइए) जिससे कल्पपर्यन्त भी मेरा आपका वियोग कदापि न हो । सूतजी ने कहा—कि इस प्रकार अपनी प्रियतमा सत्यभामा की बातें सुनकर श्रीकृष्ण जी मन्द-मन्द मुसुकराने लगे ॥८ ॥ सत्यभामा का हाथ अपने हाथ में लेकर हास-विलास के साथ कल्पवृक्ष के नीचे पहुंचे और उस स्थान से सब सेवकों को हटा

नुचरं लोकं सविलासः प्रियान्वितः ॥९॥ प्रहस्य सत्यामामन्त्र्य प्रोवाच जगतां पतिः। तत्प्रीतिपरितोषोत्थलसत्पुलकिताङ्गकः ॥१०॥

श्रीकृष्ण उवाच—न मे स्वतः प्रियतमा काचिदन्या नितम्बिनी। षोडशस्त्रीसहस्त्राणां प्रिया प्राणसमा ह्यसि ॥११॥ त्वदर्थं देवराजोऽपि विरुद्धो दैवतैः सह। त्वया यत्प्रार्थितं कान्ते शृणु तच्च महाद्भुतम् ॥१२॥ अदेयमपि वाऽकार्यमकथ्यमपि यत्पुनः। तत्करोमि कथं प्रश्नं कथयामि न तत्प्रिये ॥१३॥ पृच्छस्व सर्वं कथय यत्ते मनसि वर्त्तते।

दिया ॥९॥ सत्यभामा की ओर देखकर हँसे साथ ही पूछा कि ('क्या वह उपाय सुनोगी?') सत्यभामा भगवान् के इस अनुराग को देखकर सन्तुष्ट और पुलकित हो गयी और कृष्णचन्द्रजी भी सत्यभामा को प्रसन्न देखकर, गद्गद हो गए ॥१०॥

भगवान् ने कहा—कि हे देवि! वास्तव में इन सोलह हज़ार नारियों के रहते हुए भी तुम मुझे प्राण के तुल्य प्यारी हो ॥११॥ तुम्हारे लिये (तुम्हारी कल्पवृक्ष-वाली जिद्द रखने के लिये) देवताओं के साथ देवराज इन्द्र से भी लड़ पड़ा था। हे प्यारी! जो तुम पूछना चाहती हो वह बड़ी ही अद्भुत बात है ॥१२॥ तुम्हें मैं जो किसी को न देने वाली (बहुमूल्य) वस्तु को भी दे देता हूं,

सत्योवाच–दानं व्रतं तपो वापि किं तु पूर्वं कृतं मया ॥१४॥ येनाहं मर्त्यजा मर्त्ये भवातीताऽभवं किल। तवाङ्गार्धहरा नित्यं गरुडासनगामिनी ॥१५॥ इन्द्रादिदेव-तावासमागमन्त्या त्वया सह। अतस्त्वां परिपृच्छामि किं कृतं तु मया शुभम् ॥१६॥ भवान्तरे च किंशीला का चाहं कस्य कन्यका। कृष्ण उवाच–शृणुष्वैकमनाः कान्ते कथां त्वं पूर्वजन्मनि ॥१७॥ पुण्यं व्रतं कृतवती तत्सर्वं कथयामि ते। आसीत्कृत-

न करने वाला काम भी करता हूं, छिपाने वाली बात भी कह देता हूं तो फिर मुझसे पूछने की आवश्यकता ही क्या थी? ॥१३॥ तुम्हारे मन में जो प्रश्न हो पूछो, उसको मैं कहूंगा। सत्यभामा ने कहा–हे नाथ! मैंने पूर्वजन्म में कौन-सा दान, व्रत अथवा तपस्या की थी ॥१४॥ जिसके प्रभाव से मैं संसार में पैदा होकर भी संसार की बाधाओं से मुक्त हूं और आपकी अर्द्धाङ्गिनी हूं। सर्वदा गरुड़ पर सवारी करती हूं, आपके साथ इन्द्रादिक देवताओं के यहां आपके जाने पर आपके साथ मैं भी जाती हूं। यही मैं पूछती हूं कि मैंने उस जन्म में कौन-सा शुभ कार्य किया ॥१५-१६॥ पूर्वजन्म में मैं कौन थी, मेरा कैसा स्वभाव था, और किसकी पुत्री थी? श्री कृष्ण चन्द्रजी ने कहा, हे प्रिये! तुम सावधान होकर सुनो–मैं तुम्हारे पूर्वजन्म की कथा कहता हूं, उस जन्म में तुमने जिस

युगस्यान्ते मायापुर्यां द्विजोत्तमः ॥१८॥ आत्रेयो देवशर्मेति वेदवेदाङ्गपारगः। आति-थेयोऽग्निशुश्रूषो सौरव्रतपरायणः ॥१९॥ सूर्यमाराधयन्नित्यं साक्षात्सूर्य इवापरः। तस्यातिवयसश्चासीन्नाम्ना गुणवती सुता ॥२०॥ अपुत्रः स स्वशिष्याय चन्द्रनाम्ने ददौ सुताम्। तमेव पुत्रवन्मेने स च तं पितृवद्वशी ॥२१॥ तौ कदाचिद्वनं यातौ कुशेध्माहरणार्थिनौ। महाद्रिपादोपवने चेरतुस्तावितस्ततः ॥२२॥ तावुभौ राक्षसं

पवित्र व्रत को किया था सो बतलाता हूं। जब कि सतयुग का अन्त हो रहा था उस समय मायापुरी में एक अत्रिगोत्र वाला देवशर्मा नामक ब्राह्मण निवास करता था ॥१७-१८॥ वह समस्त वेदों तथा वेदाङ्गों का पारंगत, अतिथिपूजक, अग्निहोत्री तथा सूर्यनारायण का व्रत करता था ॥१९॥ सर्वदा सूर्यदेव की उपासना करने के कारण वह दूसरे सूर्य की भांति देदीप्यमान था, उसके वृद्धावस्था में गुणवती नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई ॥२०॥ देवशर्मा की उस पुत्री के अतिरिक्त कोई सन्तान नहीं थी, उसने अपनी पुत्री का विवाह अपने एक शिष्य चन्द्र के साथ कर दिया। पुत्रविहीन देवशर्मा अपने शिष्य चन्द्र को अपने पुत्र के समान मानते थे, और जितेन्द्रिय चन्द्र भी देवशर्मा को अपने पिता के सदृश समझता था ॥२१॥ एक दिन चन्द्र और देवशर्मा दोनों कुश और समिधा लाने

घोरमायान्तं तमपश्यताम्। भयविह्वलसर्वाङ्गावसमर्थौ पलायितुम् ॥२३॥ निहतौ रक्षसा तेन कृतान्तसमरूपिणा। तौ तत्क्षेत्रप्रभावेण धर्मशीलतया पुनः ॥२४॥ वैकुण्ठभवनं नीतौ मद्गणैर्मत्समीपगैः। यावज्जीवं तु यत्ताभ्यां सूर्यपूजादिकं कृतम् ॥२५॥ तेनाहं कर्मणा ताभ्यां संप्रीतो ह्यभवं किल। शैवाः सौराश्च गणेशाः वैष्णवाः शक्तिपूजकाः ॥२६॥ मामेव प्राप्नुवन्तीह वर्षाम्भः सागरं यथा। एकोऽहं पञ्चधा जातः क्रियया नामभिः किल। देवदत्तो यथा कश्चित् पुत्राद्याह्वाननामभिः ॥२७॥

के लिये वन में गए और इधर-उधर घूमते-घूमते हिमालय के समीप एक उपवन में पहुंच गए ॥२२॥ तब तक उन्होंने एक विकराल राक्षस को अपनी ओर आते हुए देखा। उसे देखकर ये दोनों भय से व्याकुल हो गए, शरीर के अंग शिथिल हो गए और वे भागने में असमर्थ हो गए ॥२३॥ यमस्वरूप उस राक्षस ने उन दोनों को मार डाला। हमारे गणों ने उस क्षेत्र के प्रभाव और उन दोनों के धार्मिक स्वभाव के कारण उन दोनों को बैकुण्ठधाम में पहुंचाया। जीवन भर उन दोनों ने जो सूर्यदेव का आराधन किया था ॥२४-२५॥ उसी से मैं उन पर बहुत प्रसन्न था। हे प्रिये! शैव, सूर्योपासक, गणेश के पूजक, वैष्णव और शक्ति के पूजक ॥२६॥ जिस प्रकार वर्षा का पानी समुद्र

ततश्च तौ मद्भवनाधिवासिनौ विमानयानौ रविवर्चसावुभौ। सत्तुल्यरूपौ मम सन्निधानगौ दिव्याङ्गनाचन्दनयोगभोगिनौ ॥२८ ॥

में गिरता है, उसी भांति ये सब अन्त में मेरे ही समीप आते हैं। अकेला मैं ही नाम और क्रिया के भेद से पांच रूपों में विभक्त हूं। जैसे किसी का नाम देवदत्त है, वही देवदत्त किसी का बाप है, किसी का पुत्र है, किसी का भाई है और किसी का भतीजा है। लेकिन वास्तव में वह देवदत्त एक ही है ॥२७ ॥ अस्तु, सूर्य के समान तपस्वी वे दोनों मेरे बैकुण्ठ में आकर रहने लगे, विमान पर यात्रा करते थे, उनका मेरे समान रूप था, वे मेरे ही समीप रहते थे और उनके शरीर में दिव्य चन्दन लगा रहता था ॥२८ ॥

इति पद्मपुराणे श्रीकृष्ण सत्यभामा संवादे कार्तिक माहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥१ ॥



द्वितीय अध्याय

श्रीकृष्ण उवाच–ततो गुणवती श्रुत्वा रक्षसा निहतावुभौ। पितृभर्तजदुःखार्ता करुणां पर्यदेवयत् ॥१ ॥ गुणवत्युवाच–हा नाथ हा पितस्त्यक्त्वा गच्छथः क्व मया विना। बालाहं किं करोम्यद्य ह्यनाथा भवतोर्विना ॥२ ॥ को नु मामास्थितां गेहे भोजनाच्छादनादिभिः। अकिञ्चित्कुशलां स्नेहात्पालयिष्यति दूषिताम् ॥३ ॥ क्व यास्यामि क्व तिष्ठामि किं करोमि यथा गृणन्। विधात्रा हा हताऽस्म्यद्य कथं जीवामि

श्रीकृष्ण चन्द्रजी ने कहा कि हे देवि! गुणवती अपने पिता और स्वामी को राक्षस द्वारा मारे जाने का संवाद सुनकर पिता और पति के क्लेश से दुःखित होकर करुण विलाप करने लगी॥ १ ॥ हा नाथ! हा पिता! हमको त्याग कर तुम कहां चले गये? मैं अकेली कन्या हूं, आप लोगों के बिना असहायिनी मैं अब क्या करूं? ॥२ ॥ अब मेरे भोजन और वस्त्रादिकों की व्यवस्था कौन करेगा? घर में स्नेहपूर्वक पालन-पोषण कौन करेगा? मैं कुछ भी नहीं कर सकती, मुझ विधवा की रक्षा कौन करेगा? ॥३ ॥ मैं मूर्ख कहां जाऊँ? कौन मेरे दुःख को दूर करेगा? कहां रहूँ? क्या करूँ? हा

बालिशा ॥४॥ श्रीकृष्ण उवाच—एवं बहु विलप्याथ कुररीव भृशातुर। हतभाग्या हतसुखा हताशा हतजीविता: ॥५॥ शरणं कं प्रयाम्यद्य यो मे दुःखं प्रमार्जति। पपात भूमौ विकला रम्भा वातहता यथा ॥६॥ चिरादाश्वास्य सा भूयो विलप्य करुणं बहु। निमग्ना शोकजलधौ दुःखिता समवर्तत ॥७॥ सा गृहोपस्करान् सर्वान् विक्रीय शुभकर्म तत्। तयोश्चक्रे यथाशक्ति पारलौक्यमतन्द्रिता ॥८॥ तस्मिन्नेव पुरे चक्रे

देव! मुझ पर ऐसा कोप हुआ, अब कैसे जीऊँ? मैं बड़ी ही पापिन हूं ॥४॥ श्री कृष्ण जी ने कहा—कि इस तरह रोती हुई वह मृगी की तरह व्याकुल होकर अपने को भाग्यहीना, असुखी, आशाहीन, जीवनहीन कहती हुई बोली कि अब मैं किसकी शरण में जाऊं जो मेरे दुःख को हरे। तत्पश्चात् वायु से आहत केले के वृक्ष की तरह वह पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥५-६॥ अधिक देर बाद होश में आई। फिर भी अत्यन्त करुण विलाप कर बहुत विकल होकर शोकमहासागर में डूब गई ॥७॥ अपने घर की सारी वस्तुएं बेचकर सावधानी के साथ उसने अपने पिता और पति की यथाशक्ति श्राद्धादिक क्रिया की ॥८॥ उस के पश्चात् उसी पुरी नें निवास करती हुई वह विष्णु भगवान् की भक्ति में तत्पर होकर शुद्ध तथा शान्त स्वभाव से अपनी इन्द्रियों के अपने वश में करके वहीं रहने

वासं प्रभृतजीवनी। विष्णुभक्तिपरा शान्ता सत्यशौचा जितेन्द्रिया ॥९ ॥ व्रतद्वयं तया सम्यगाजन्ममरणात्कृतम्। एकादशीव्रतं सम्यक् सेवनं कार्तिकस्य च ॥१० ॥ एतद् व्रतद्वयं कान्ते ममातीव प्रियंकरम्। भुक्तिमुक्तिकरं पुण्यं पुत्रसम्पत्तिदायकम् ॥११ ॥

कार्तिके मासि ते नित्यं तुलासंस्थे दिवाकरे। प्रातः स्नास्यन्ति ते मुक्ता महापातकिनोऽपि च ॥१२ ॥ स्नानं जागरणं दीपं तुलसीवनपालनम्। कार्तिके मासि कुर्वन्ति ते नरा विष्णुर्मूतयः ॥१३ ॥ सम्मार्जनं विष्णुगृहे स्वस्तिकादिनिवेदनम्। विष्णोः पूजां

लगी ॥९ ॥ उसने जन्म से लेकर मरण तक एकादशी का व्रत तथा कार्तिक मास का विधिवत् सेवन किया ॥१० ॥ हे प्रिये! ये दोनों एकादशी और कार्तिक व्रत हमको बड़े ही प्रिय हैं। मुक्ति, भुक्ति, पुत्र तथा सम्पत्ति को देने वाले परम पवित्र हैं ॥११ ॥

जो मनुष्य तुला की संक्रान्ति रहते हुए कार्तिक मास में प्रातःकाल में स्नान करते हैं वे यदि बड़े से बड़े पापी हों, तो भी उनसे मुक्त हो जाते हैं ॥१२ ॥ जो मनुष्य कार्तिक स्नान, जागरण, दीप-दान तथा तुलसी के वृक्ष की रक्षा करते हैं, वे साक्षात् विष्णु भगवान् के तुल्य हैं ॥१३ ॥ जो भक्त कार्तिक मास में विष्णु भगवान् के मन्दिर की स्वच्छता तथा विष्णु भगवान् का स्वस्त्ययन करते हैं

च ये कुर्युर्जीवन्मुक्तास्तु ते नराः ॥१४॥ इत्थं दिनत्रयमपि कार्तिके ये प्रकुर्वते। देवानामपि ते वन्द्याः किं यैराजन्मतः कृतम् ॥१५॥ इत्थं गुणवती सम्यक् प्रत्यब्दं व्रतिनी ह्यभूत्। नित्यं विष्णोः प्रपूजायां भक्त्या तत्परमानसा ॥१६॥ कदाचित्सरुजा साऽथ कृशाङ्गी ज्वरपीडिता। स्नातुं गङ्गां गता कान्ते कथञ्चिच्छन्नकैस्तदा ॥१७॥ यावज्जलान्तरगता कम्पिता शीतपीडिता। तावत्सा विह्वलाऽपश्यद्विमानं प्राप्त-मम्बरात् ॥१८॥ शङ्खचक्रगदापद्मैरायुधैरुपलक्षिताः। विष्णुरूपधराः सम्यग्

वे प्राणी तो जीवन्मुक्त हैं ॥१४॥ इस प्रकार जो जन कार्तिक मास में तीन दिन तक भी विष्णु के मन्दिर की स्वच्छता अथवा उनका पूजन करते हैं, देवतागण भी उनको वन्दना करते हैं। जिन्होंने जन्म भर इसका पालन किया है, उनका क्या कहना है? ॥१५॥ इसी प्रकार वह गुणवती (विधवा) दत्तचित्त होकर प्रतिवर्ष कार्तिक का व्रत और विष्णु भगवान् की पूजा भक्तिपूर्वक करती रही ॥१६॥ हे प्रिये! एक बार वह रोग के कारण दुबली हो गई थी तथा ज्वर से पीड़ित होने पर भी धीरे-धीरे किसी प्रकार गंगास्नान करने को गई ॥१७॥ वह जल में स्नान करने के निमित्त उत्तरी और जाड़े से कांपने लगी, विकल हो गई। तब तक उसने आकाश की ओर से अपनी ओर आते हुए एक विमान

वैनतेयध्वजाङ्कितम् ॥१९॥ आरोह्य व्योमयानं तामप्सरोगणसेविताम्। चामरैर्वीज्यमानां तां वैकुण्ठमनयन् गणाः ॥२०॥ अथ सा तद्विमानस्था ज्वलदग्निशिखोपमा। कार्तिकव्रतपुण्येन मत्सान्निध्यं गताऽभवत् ॥२१॥ अथ ब्रह्मादिदेवानां यदा प्रार्थनया भुवम्। आगतोऽहं गणाः सर्वे यातास्तेऽपि मया सह ॥२२॥ एते हि यादवाः सर्वे मद्गणा एव भामिनि। पिता ते देवशर्माऽभूत् सत्राजिदभिधो ह्ययम् ॥२३॥ यश्चन्द्रशर्मा

को देखा ॥१८॥ जो शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म आदि विविध शस्त्रों से सुशोभित कोई विष्णु भगवान् का रूप धारण करने वाला था। रथ पर उनके वाहन गरुड़ की ध्वजा अंकित थी ॥१९॥ तब मेरे (विष्णु के) गण विमान पर चढ़ाकर उस पर चँवर डुलाते हुए अप्सरागणों से सुशोभित उस गुणवती को बैकुण्ठ लोक में ले गए ॥२०॥ वह गुणवती प्रज्वलित अग्नि की शिखा की तरह उस विमान में बैठी हुई एकमात्र कार्तिक व्रत के प्रभाव से मेरे समीप आई ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर जब ब्रह्मादिक देवताओं की प्रार्थना करने पर मैं इस मानव लोक में आया तब मेरे गण भी मेरे साथ आए ॥२२॥ हे भामिनी! ये समस्त यादव मेरे ही गण हैं, देवशर्मा नामक विप्र जो पूर्व जन्म में तुम्हारा पिता था, वही इस जन्म में सत्राजित होकर यहां है ॥२३॥ जो पूर्व जन्म में तुम्हारे चन्द्रशर्मा

सोऽक्रूरस्त्वं सा गुणवती शुभा। कार्तिकव्रतपुण्येन बहु मत्प्रीतिदायिनी ॥२४॥ मद्द्वारि यत्त्वया पूर्वं तुलसीवाटिका कृता। तस्मादयं कल्पवृक्षस्तवाङ्गणगताः शुभे ॥२५॥ कार्तिके दीपदानं च त्वया वै यत्कृतं पुनः। त्वद्देहगेहसंस्थेयं तस्माल्लक्ष्मीः स्थिराऽभवत् ॥२६॥ यच्च व्रतादिकं सर्वं विष्णवे भर्तृरूपिणे। निवेदितवती तस्मान्मम भार्या त्वमागता ॥२७॥ आजन्ममरणात्पूर्वं यत्कृतं कार्तिकव्रतम्। कदाचिदपि तेन त्वं मद्वियोगं न यास्यसि ॥२८॥ एवं ये कार्तिके मासे नराः व्रतपरायणाः। मत्सान्निध्यं

थे, वही अक्रूर हुए और तू ही गुणवती है। कार्तिक व्रत के पुण्य से तू मुझे अति प्यारी है ॥२४॥ हे शुभे! पूर्व जन्म में मेरे मन्दिर के द्वार पर तुमने तुलसी का बगीचा लगाया था, उसी पुण्य के प्रभाव से तुम्हारे घर में यह कल्पवृक्ष सुशोभित हो रहा है ॥२५॥ पूर्व जन्म में जो तुमने कार्तिक मास में दीप-दान किया था, इसी कारण तुम्हारे शरीर में शोभा और तुम्हारे घर में साक्षात अचल लक्ष्मी निवास करती हैं ॥२६॥ उस जन्म में तुमने जो व्रतादिक पतिस्वरूप भगवान् के लिये अर्पण किया था उसी के फल से तुम इस जन्म में मेरी प्रिय भार्या हुई हो ॥२७॥ पूर्व जन्म में आजीवन तुमने नियम सहित कार्तिक का व्रत किया था, उसीसे कभी भी हमारा और तुम्हारा वियोग नहीं हो

गतास्तेऽपि प्रीतिदास्त्वं यथा मम ॥२९ ॥ यज्ञदानव्रततपःकारिणे मानवाश्च ये। कार्तिक-व्रत पुण्यस्य नाप्नुवन्ति कलामपि ॥३० ॥ सूत उवाच—इत्थं निशम्य भुवनाधिपतेस्तदानीं प्राग्जन्मपुण्यभववैभवजातहर्षा । विश्वेश्वरं त्रिभुवनैकनिदानभूतं कृष्णं प्रणम्य वचनं निजगाद् सत्या ॥३१ ॥

सकेगा ॥२८ ॥ इसी प्रकार जो प्राणी कार्तिक का व्रत करेंगे वे सब भी मेरे ही समीप रहेंगे और तुम्हारे ही समान प्रिय होंगे ॥२९ ॥ यज्ञ, दान, व्रत तथा तपस्या करने वाले मनुष्यों को जो फल प्राप्त होता है, वह कार्तिक व्रत के पुण्य फल का सोलहवां भाग भी नहीं होता ॥३० ॥ सूत जी ने कहा—इस प्रकार सत्यभामा श्रीकृष्ण भगवान् से अपने पूर्व जन्म सम्बन्धी पुण्य के प्रभाव का वृत्तान्त सुनकर प्रसन्न हुई तथा सारे संसार के आदिकारण भगवान् श्री कृष्ण चन्द्रजी को प्रणाम करके बोली ॥३१ ॥

इति पद्मपुराणे श्रीकृष्ण सत्यभामा संवादे गुणवती
वर्णन नाम द्वितीयो अध्यायः समाप्तः ॥२ ॥



तीसरा अध्याय

श्रीसत्योवाच—सर्वेऽपि कालावयवास्तव कालस्वरूपिणः। समानास्तु कथं नाथ मासानां कार्तिको वरः॥१॥ एकादशी तिथीनां च मासानां कार्तिकः प्रिये। कथं तद्देवदेवेश कारणं तत्र कथ्यताम्॥२॥ श्रीकृष्ण उवाच—साधु पृष्टं त्वया कान्ते शृणुष्वैकाग्रमानसा। पृथोर्वैन्यस्य संवादं महर्षेर्नारदस्य च॥३॥ एवमेव पुरा पृष्टो नारदः पृथुना प्रिये। उवाच कार्तिकाधिक्ये कारणं सर्वविन्मुनिः॥४॥ नारद उवाच—

सत्यभामा ने पूछा—देवदेवेश्वर! कालरूपधारी आपके सभी (वर्ष, मास, दिन, आदि) अंग-प्रत्यंग एक समान महत्त्व रखते हैं फिर भी सब तिथियों में एकादशी और सब महीनों में कार्तिक मास आप को विशेष प्रिय क्यों हैं? इसका कारण बताइये। भगवान् श्री कृष्ण बोले—सत्ये! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है। एकाग्रचित्त होकर सुनो। प्रिये! पूर्वकाल में महाराजा वेन के पुत्र राजा पृथु ने भी देवर्षि नारद से ऐसा ही प्रश्न किया था। उस समय सर्वज्ञ मुनि ने उन्हें कार्तिक मास की श्रेष्ठता का कारण बताया था। नारद जी बोले—पूर्व काल में शङ्ख नामक एक असुर था, जो त्रिलोकी

शङ्खनामाऽभवत्पूर्वमसुरः सागरात्मजः। त्रिलोकीमथने शक्तो महाबलपराक्रमः ॥५॥ जित्वा देवान्निराकृत्य स्वर्लोकात्स महासुरः। इन्द्रादिलोकपालानामधिकारांस्तथाऽहरत् ॥६॥ तद्भयादथ ते देवाः सुवर्णाद्रिगुहां गताः न्यवसन्बहुवर्षाणि सावरोधाः सबान्धवाः ॥७॥ सुवर्णाद्रिगुहादुर्गसंस्थितास्त्रिदशा यदा। बद्धासना बभूवुस्ते तदा दैत्योऽविचारयत् ॥८॥ हृताधिकारास्त्रिदशा मया यद्यपि निर्जिताः। लक्ष्यन्ते बलयुक्तास्ते करणीयं मयाऽत्र किम् ॥९॥ अद्य ज्ञातं मया देवा वेदमन्त्रबलान्विताः। तान् हरिष्ये ततः सर्वे बलहीना भवन्ति वै ॥१०॥ नारद उवाच–इति मत्वा तदा दैत्यो

का नाश करने में समर्थ तथा महान् बल एवं पराक्रम से युक्त था। वह समुद्र का पुत्र था। उस महान् असुर ने समस्त देवताओं को परास्त करके स्वर्ग से बाहर कर दिया और इन्द्र आदि लोकपालों के अधिकार छीन लिये। देवता मेरुगिरि की दुर्गम कन्दराओं में छिपकर रहने लगे। शत्रु के अधीन नहीं हुए। तब दैत्य ने सोचा कि 'देवता वेद-मन्त्रों के बल से प्रबल प्रतीत होते हैं। यह बात मेरी समझ में आ गयी है, अतः मैं वेदों का ही अपहरण करूंगा। इससे समस्त देवता निर्बल हो

विष्णुमालक्ष्य निद्रितम्। सत्यलोकाज्जहाराशु वेदानादिस्वयम्भुवः ॥११ ॥ नीतास्तु तेन ते वेदास्तद्भयात्तु निराक्रमन्। तोयानि विविशुर्यज्ञमन्त्रबीजसमन्विताः ॥१२ ॥ तान्मार्गमाणः शङ्खोऽपि समुद्रान्तगतो भ्रमन्। न ददर्श तदा दैत्यः क्वचिदेकत्र संस्थितान् ॥१३ ॥ अथ ब्रह्मा सुरैः सार्द्धं विष्णुं शरणमन्वगात्। पूजोपहारमादाय वैकुण्ठभुवनं गतः ॥१४ ॥ तत्र तस्य प्रबोधाय गीतवाद्यादिकाः क्रियाः चक्रुर्देवास्तथा गन्धधूपदीपान्मुहुर्मुहुः ॥१५ ॥ अथ प्रबुद्धो भगवान् तद्भक्तिपरितोषितः। ददृशुस्ते

जाएंगे।' ऐसा निश्चय करके वह वेदों को हर कर ले गया। उसी समय बीजों के साथ यज्ञ मन्त्र उसके डर से जल में छिप गये। शंखासुर भी बीज मन्त्रों को खोजता हुआ समुद्र के भीतर घूमने लगा। किन्तु वह राक्षस उन वेद मन्त्रों को एक ही स्थान पर नहीं पा सका। इधर ब्रह्माजी पूजा की सामग्री लेकर देवताओं के साथ वैकुण्ठ लोक में जा भगवान् विष्णु की शरण में गये। उन्होंने भगवान् को गूढ़ निद्रा से जगाने के लिये गीत गाये और बाजे बजाये। तब भगवान् विष्णु उनकी भक्ति से सन्तुष्ट हो जाग उठे। देवताओं ने उनका दर्शन किया। वे सहस्रों सूर्यों के समान कान्तिमान्

सुरास्तत्र, सहस्त्रार्कसमद्युतिम् ॥१६॥ उपचारैः षोडशभिः सम्पूज्य त्रिदशास्तदा। दण्डवत्पतिता भूमौ तानुवाचाथ माधवः ॥१७॥

विष्णु उवाच—वरदोऽहं सुरगणाः गीतवाद्यादिमङ्गलैः। मनोऽभिलषितान् कामान् सर्वानेव ददामि वः ॥१८॥ इषस्य शुक्लैकादश्यां यावदुद्बोधिनी भवेत्। निशातुर्यांशशेषे ये गीतवाद्यादिमङ्गलम् ॥१९॥ कुर्वन्ति नित्यं मनुजा ये भवद्भिर्यथा कृतम्। ते मत्प्रीतिकरा नित्यं मत्सान्निध्यं व्रजन्ति हि ॥२०॥ पाद्यार्घ्याचमनीयापो

दिखाई देते थे। उस समय षोडशोपचार से भगवान् की पूजा करके देवता उनके चरणों में पड़ गये। तब भगवान् लक्ष्मीपति ने उनसे इस प्रकार कहा।

श्री विष्णु बोले—देवताओ! तुम्हारे गीत, वाद्य आदि मङ्गलमय कार्यों से सन्तुष्ट हो मैं वर देने को उद्यत हूं। तुम्हारी सभी मनोवाञ्छित कामनाओं को पूर्ण करूंगा। कार्तिक के शुक्ल पक्ष में 'प्रबोधिनी' एकादशी के दिन प्रातःकाल में जो सज्जन तुम लोगों के समान कीर्तन और मङ्गल करेंगे वे हमारे अति प्रिय होंगे और शरीर त्याग करने पर वैकुण्ठ आएंगे। यह जो पाद्य, अर्घ्य, आचमन और जल आदि सामग्री आप लोग हमारे लिये लाये हैं वे सब अनन्त गुणवाली होकर आप लोगों को आनन्दित करेंगी। जो शंखासुर सब वेदों को चुराकर

यद्भवद्भिरुपाहृतम्। तदनन्तगुणं तस्मात् जातं वः सुखकारणम्॥२१॥ वेदाः शङ्खाहताः सर्वे तिष्ठन्त्युदकसंस्थिताः।तानानयाम्यहं देव हत्वा सागरनन्दनम्॥२२॥ अद्यप्रभृति वेदास्तु मन्त्रबीजमखान्विताः। प्रत्यब्दं कार्तिके मासि विश्रमन्त्यप्सु सर्वदा॥२३॥ मत्स्यरूपोऽहमपि च भवामि जलमध्यगः। भवन्तोऽपि मया सार्ध-मायान्तु समुनीश्वराः॥२४॥ लोकेऽस्मिन् ये प्रकुर्वन्ति प्रातः स्नानं नरोत्तमाः। ते सर्वयज्ञावभृथैः सुस्नाताः स्युर्न संशयः॥२५॥ ये कार्तिकव्रतं सम्यक्कुर्वन्ति मनुजाः सदा। ते देहान्ते त्वया शक्र प्राप्या मद्भवनं तदा॥२६॥ विघ्नेभ्यो रक्षणं तेषां सम्यक्

ले गया है वे सब समुद्र में हैं। मैं उस सागर के दुष्ट पुत्र को मारकर ले आता हूं। आज से मन्त्र बीज और यज्ञों के साथ चारों वेद प्रति वर्ष कार्तिक मास में जल में विश्राम किया करेंगे। अब मैं मत्स्य का रूप धारण करके समुद्र में जाता हूं और आप लोग भी सब ऋषियों के लेकर हमारे साथ आवें। इस लोक में जो प्राणी (कार्तिक में) नित्य प्रातःकाल में स्नान करेंगे वे यज्ञान्त में अवभृथ स्नान के पुण्यफलभागी होंगे। जो कार्तिक में स्नान और व्रत किया करेंगे हे इन्द्र! उनको तुम मेरे लोक में पहुंचा दिया करो। हे देवेन्द्र! मेरी आज्ञा से उन प्राणियों को सब आपत्तियों से बचाते रहना, हे वरुण! तुम उन्हें सदा पुत्रपौत्रादि सन्तान देते रहना। हे धनाधिप कुबेर!

कार्यं तथा त्वया। देया त्वया च वरुण पुत्रपौत्रादिसन्ततिः ॥२७॥ धनवृद्धिर्धनाध्यक्ष त्वया कार्या ममाज्ञया। मम रूपधरः साक्षाज्जीवन्मुक्तो भवेद्यमः ॥२८॥ आजन्म-मरणाद्येन कृतमेतद् व्रतोत्तमम्। यथोक्तविधिना सम्यक् स मान्यो भवतामपि ॥२९॥ एकादश्यां यतश्चाहं भवद्भिः प्रतिबोधितः। अतश्चैषा तिथिर्मान्या सातीव प्रीतिदा मम ॥३०॥ व्रतद्वयं सम्यगिदं नरैः कृतं सान्निध्यकृन्मे न तथाऽन्य-दस्ति। नान्यानि तीर्थानि तपांसि यज्ञाः स्वर्लोकदास्ते न यथा सुरोत्तमाः ॥३१॥

मेरी आज्ञानुसार तुम उनका धन-धान्य बढ़ाते रहना, क्योंकि इस प्रकार का आचरण करने वाला प्राणी हमारा रूप धारण करके जीवन्मुक्त हो जाया करता है। जन्म से लेकर मरण पर्यन्त विधिपूर्वक जिसने यह उत्तम व्रत कर लिया है वह आप लोगों का भी पूजनीय है। आप लोगों ने मुझे कार्तिक शुक्ल एकादशी तिथि को जगाया है इसी से यह एकादशी मान्य है और हमको बड़ी प्रिय है। हे देवता लोगो! ये दोनों व्रत विधिपूर्वक करने से प्राणी मेरे समीप पहुंचते हैं। इस प्रकार का न कोई तीर्थ न कोई व्रत और न कोई यज्ञ ही है जो स्वर्ग दे सके ॥३१॥

श्रीपद्मपुराणे श्रीकृष्णसत्यासंवादे कार्तिकमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥३॥

चौथा अध्याय

नारद उवाच—इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः शफरीतुल्यरूपधृक्। ययौ तदाञ्जलौ विन्ध्यवासिनः कश्यपस्य सः ॥१॥ स तं कमण्डलौ क्षिप्रं कृपया क्षिप्तवान्मुनिः॥ तावत्स न ममौ तत्र ततः कूपे न्यवेशयत्॥२॥ तथापि न ममौ तावत्कासारं प्रापयत्स तम्। एवं स सागरे मत्स्यः क्षिप्तोऽसावभ्यवर्द्धत॥३॥ ततोऽवधीत्स तं शंखं विष्णुर्मत्स्यस्वरूपधृक्। अथ तं स्वकरे धृत्वा बदरीवनमभ्यगात्॥४॥ तत्राहूय

नारद जी ने कहा—ऐसा कह कर विष्णु भगवान् मछली के समान रूप धारण कर विन्ध्यवासी कश्यप ऋषि की अञ्जली में आ पहुंचे॥१॥ कश्यप ऋषि ने दया करके उसे अपने कमण्डलु में रख लिया, जब वह उसके कमण्डलु में न समा सकी तब उसे कुएं में डाल दिया। जब उसमें भी न समा सकी तब उसे तालाब में फेंक दिया और जब तालाब में भी न आ सकी तब उसे समुद्र में डाला। वहां भी वह बढ़ने लगी॥२–३॥ इसके उपरान्त उस नारायणरूपी मत्स्य ने शङ्खासुर को मारा। तत्पश्चात् उस शङ्ख को हाथ में लेकर बदरिकारण्य में आ पहुंचे॥४॥ बदरीनारायण में सब मुनियों

ऋषीन्सर्वानिदमाज्ञापयत्प्रभुः। विष्णुरुवाच–जलान्तरे विशीर्णास्तु वेदास्ता परिमार्गथ ॥५ ॥ आनयध्वं च त्वरिताः सरहस्याञ्जलान्तरात्। तावत्प्रयागे तिष्ठामि देवतागणसंयुतः ॥६ ॥ नारद उवाच–ततस्तैः सर्वमुनिभिस्तपोबलसमन्वितैः। उद्धृताश्च सबीजास्ते वेदाः यज्ञसमन्विताः ॥७ ॥ तेषु यावन्मितं येन लब्धं तावद्धि तस्य तत्। स स एव ऋषिर्जातस्तदाप्रभृति पार्थिव ॥८ ॥ अथ सर्वेऽपि सङ्गम्य प्रयागं मुनयो ययुः। विष्णवे सविधात्रे ते लब्धान् वेदान् न्यवेदयन् ॥९ ॥ लब्ध्वा वेदान्

को बुला कर आज्ञा दी। विष्णु ने कहा–पानी में इधर–उधर फैले हुए वेदों को ढूंढो ॥५ ॥ शीघ्र ही आप लोग रहस्य युक्त वेदों को जल से निकाल कर शीघ्र मेरे पास ले आवो। इतने काल तक मैं देवताओं के साथ प्रयाग में ठहरा हूं ॥६ ॥ राजा पृथु से नारदजी ने कहा–उसके पश्चात् अपने तपोबल से समस्त ऋषियों ने यज्ञ, बीजों के सहित सब वेदमन्त्रों को ढूंढ निकाला ॥७ ॥ उन वेदों में से जो–जो भाग जिस–जिस मुनि को मिला वह–वह भाग उस–उस मुनि का हो गया। तत्पश्चात् हे राजन्! उसी दिन से उस–उस भाग के वे ही ऋषि कहलाये ॥८ ॥ सब वेदों को लेकर मुनिगण प्रयाग में आये और ब्रह्मा के साथ विष्णु को उन लोगों ने सब वेद समर्पित कर दिये ॥९ ॥ सब वेदों

समग्रांस्तु ब्रह्मा हर्षसमन्वितः। अयजद्वाजिमेधेन देवर्षिगणसंयुतः ॥१०॥ यज्ञान्ते
देवगन्धर्वयज्ञपन्नगगुह्यकाः। निपत्य दण्डवद्भूमौ विज्ञप्तिं चक्रुरञ्जसा ॥११॥ देवा
ऊचुः—देवदेव जगन्नाथ विज्ञप्ति शृणु नः प्रभो। हर्षकालोऽयमस्माकं तस्मात्त्वं वरदो
भव ॥१२॥ स्थानेऽस्मिन् द्रुहिणो वेदान् नष्टान् प्राप्य पुनस्त्वयम्। यज्ञभागान् वयं
प्राप्तास्त्वत्प्रसादाद्रमापते ॥१३॥ स्थानमेतद्धि नः श्रेष्ठं पृथिव्यां पुण्यवर्धनम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं चास्तु प्रसादाद्भवतः सदा ॥१४॥ कालोऽप्ययं महापुण्यो ब्रह्मघ्ना-

को पाकर ब्रह्मा बड़े प्रसन्न हुए और तुरन्त ही उन्होंने देवता तथा ऋषियों के साथ अश्वमेध यज्ञ
किया ॥१०॥ यज्ञ के अन्त में देवता, गन्धर्व, यक्ष, नाग और गुह्यक गण विष्णु को भूमि में दण्डवत्
करके प्रार्थना करने लगे ॥११॥ देवतागणों ने कहा—हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे प्रभो! हम लोगों
की प्रार्थना सुनिए। हम लोगों के हर्ष का समय है, इससे आप हमें वरदान दीजिए ॥१२॥ इस स्थान
में नष्ट हुए वेद पुनः ब्रह्मा जी को मिले हैं। हे लक्ष्मीपति! आपकी अनुकम्पा से हम लोगों को यज्ञ
का भाग भी यहां मिला है ॥१३॥ इसलिये यह स्थान आप के प्रसाद से आज से पृथ्वी भर में
सर्वप्रधान, पुण्य को बढ़ाने वाला, मुक्ति और भुक्ति को देने वाला होवे ॥१४॥ ब्रह्महत्यादिक महान्

दिविशुद्धिकृत्। दत्ताक्षयकरश्चास्तु वरमेवं ददस्व नः ॥१५॥ विष्णुरुवाच- ममाप्येतन्मतं देवा यद्भवद्भिरुदाहृतम्। तथास्तु सुलभं त्वेतद् ब्रह्मक्षेत्रमिति- प्रथम् ॥१६॥ सूर्यवंशोद्भवो राजा गङ्गामत्रानयिष्यति। सा सूर्यकन्यया चात्र कालिन्द्या योगमेष्यति ॥१७॥ यूयं च सर्वे ब्रह्माद्या निवसन्तु मया सह। तीर्थराजेति विख्यातं तीर्थमेतद्भविष्यति ॥१८॥ दानं तपो व्रतं होमो जपपूजादिकाः क्रियाः। अनन्तफलदाः सन्तु मत्सान्निध्यकराः सदा ॥१९॥ ब्रह्महत्यादिपापानि सप्तजन्मार्जितानि च।

पापों का नाश करने वाला आज का यह समय भी परम पवित्र और अक्षय फल दाता हो ऐसा वरदान हम लोगों को दीजिये ॥१५॥ श्री विष्णु भगवान् ने कहा-आप लोगों ने जो कुछ कहा वही हमारा भी ध्येय है। जैसा आप लोगों ने मुझसे कहा है, वैसा ही यह ब्रह्मक्षेत्र जगत् प्रसिद्ध होगा ॥१६॥ सूर्यवंश में उत्पन्न राजा (भगीरथ) गङ्गाजी को यहां पर लावेंगे और गङ्गाजी का सूर्यपुत्री यमुनाजी के साथ यहां सङ्गम होगा ॥१७॥ आप लोगों तथा समस्त ब्रह्मादिक देवताओं के साथ मैं भी यहीं पर रहूंगा और यह स्थान 'तीर्थराज' के नाम से प्रसिद्ध होगा ॥१८॥ यज्ञ, दान, व्रत, हवन, जप और पूजादिक कृत्य यहां पर सदा अनन्त फल देने वाले और मोक्षदायी होंगे ॥१९॥

दर्शनादस्य तीर्थस्य विनाशं यान्तु तत्क्षणात् ॥२०॥ देहत्यागं च ये धीराः कुर्वन्त्यत्र ममाग्रतः। मत्तनुं प्रविशत्यन्ते न पुनर्जन्मिनो नराः ॥२१॥ पितृनुद्दिश्य ये श्राद्धं कुर्वन्त्यत्र समागताः। तेषां पितृगणाः सर्वे यान्ति मत्समरूपताम् ॥२३॥ मकरस्थे रवौ माघे प्रातः स्नानं प्रकुर्वताम्। दर्शनादेव पापानि यान्ति सूर्याद्यथा तमः ॥२४॥ सलोकत्वं समीपत्वं सारूप्यं च त्रयं क्रमात्। नृणां दास्याम्यहं स्नानैर्माघे मकरगे रवौ ॥२५॥

सात जन्म के किये हुए ब्रह्महत्यादि महापाप भी इस तीर्थ राज के दर्शनमात्र से उसी समय नष्ट हो जायेंगे ॥२०॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य मेरे सन्निकट (तीर्थराज में) शरीर त्याग करेंगे वे मेरे ही शरीर में मिल जाएंगे, फिर उनका पुनः जन्म नहीं होगा ॥२१॥ जो प्राणी यहां अपने पितरों के उद्देश्य से श्राद्ध करेंगे उनके पितर साक्षात् मेरे समान रूप वाले हो जायेंगे ॥२२॥ यह मानव भी समस्त प्राणियों को महापुण्य फल देने वाला होगा। जो लोग इस तीर्थराज में मकर राशि के सूर्य (माघ) में स्नान करेंगे, उनके समस्त पाप नष्ट हो जावेंगे ॥२३॥ मकर की संक्रान्ति होने पर माघ मास में प्रातःकाल स्नान करने वालों के केवल दर्शन मात्र से सब पाप विनष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्य के तेज से अन्धकार का नाश हो जाता है ॥२४॥ माघ के महीने में मकर की संक्रान्ति होने पर स्नान करने

यूयं मुनीश्वरा सर्वे शृणुध्वं वचनं मम। बदरीवनमध्येऽहं सदा तिष्ठामि सर्वगः ॥२६॥ अन्यत्र यच्छतैर्वर्षैस्तपसा प्राप्यते सदा॥२७॥ स्थानस्य दर्शनं तस्य ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः। जीवन्मुक्ताः सदा तेषु पापं नैवावतिष्ठते॥२८॥

सूत उवाच—एवं देवान् देवदेवः तदुक्त्वा तत्रैवान्तर्धानमागात्सवेधाः। देवाः सर्वेऽप्यंशकैस्तत्र तिष्ठंश्चान्तर्धानं प्रापुरिन्द्रादयस्ते॥२९॥ इमां कथां यः शृणु-

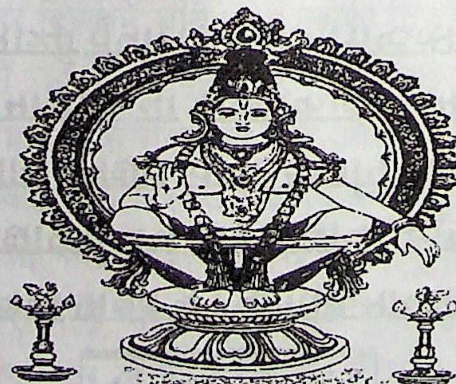
वाले प्राणियों को मैं सालोक्य (अपना लोक) सामीप्य (अपने समक्ष) सारूप्य (अपना-सा-रूप) इन तीनों मुक्तियों को प्रदान करता हूं॥२५॥ हे मुनिवर! आप लोग मेरे वाक्य को सुनिये। मैं सर्वत्र व्याप्त रहता हुआ सर्वदा बदरिकारण्य में निवास करता हूं॥२६॥ अन्यत्र सैंकड़ों वर्ष तप करने पर जो फल प्राप्त होता है, वही फल यहां एक दिन में मिल जाएगा॥२७॥ जो महानुभाव मेरे उस स्थान (बदरिकाश्रम) का दर्शन करेंगे वे जीवन्मुक्त हो जायेंगे और उनके समस्त पाप नष्ट हो जाएंगे॥२८॥

सूतजी ने कहा कि इस तरह विष्णु भगवान् उन सब देवताओं से कहकर ब्रह्माजी के साथ ही अन्तर्धान हो गये और इन्द्रादि देवगण भी अपने अंशों को वहीं छोड़कर अन्तर्धान हो गये॥२९॥

यान्नरोत्तमो यः श्रावयेद्वापि विशुद्धचेताः। स तीर्थराजं बदरीवनं यद् गत्वा फलं तत्समवाप्नुयाच्च ॥३०॥

जो कोई प्राणी इसे शुद्ध मन से सुनेंगे अथवा सुनावेंगे वे तीर्थराज प्रयाग और बदरिकारण्य जाने के समान फल को प्राप्त होवेंगे ॥३०॥

श्रीपद्मपुराणे श्रीकृष्णसत्यासंवादे कार्तिकमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥४॥



पांचवां अध्याय

पृथुरुवाच–महत्फलं त्वया प्रोक्तं मुने कार्तिकमाघयोः। तयोः स्नानविधिं सम्यङ् नियमानपि नो वद ॥१ ॥ उद्यापनविधिं चैव यथावद्वक्तुमर्हसि ॥२ ॥ नारद उवाच– त्वं विष्णोरंशसम्भूतो नाज्ञातं विद्यते तव। तथापि वदतः सम्यङ् नियमानपि च शृणु ॥३ ॥ आश्विनस्य तु मासस्य या शुक्लैकादशी भवेत्। कार्तिकस्य व्रतानीह तस्यां कुर्यादतन्द्रितः ॥४ ॥ रात्र्यां तुर्यांशशेषायामुत्तिष्ठेत्सर्वदा व्रती। प्रागुदीचीं व्रजेद्

राजा पृथु ने कहा–हे मुनि जी! आपने कार्तिक और माघ मास का विस्तृत फल कहा। अब इसकी विधिवत् स्नान की विधि, नियम और (उद्यापन की विधि भी) आप हम से कहिये ॥१–२ ॥ नारद जी ने कहा कि आप विष्णु भगवान् के अंश से उत्पन्न हुए हैं, अतएव यह बात आपको मालूम ही है, तथापि मैं यथोचित विधान आप से कहता हूं उसे सावधान मन से सुनिये ॥३ ॥ आश्विन मास की शुक्लपक्ष एकादशी से सावधान होकर कार्तिक मास का व्रत करना आरम्भ करना चाहिये ॥४ ॥ इस व्रत को करने वाला सर्वदा रात्रि के चौथे प्रहर में उठे। जल का पात्र लिये

ग्रामाद् बहिः सोदकभाजनः ॥५ ॥ दिवासन्ध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः । अन्तर्धाय तृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा ॥६ ॥ वक्त्रं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनोच्छ्वासवर्जितः । कुर्यान्मूत्रपुरीषे च रात्रौ वै दक्षिणामुखः ॥७ ॥ गृहीतशिश्नश्चोत्थाय मृद्भिरभ्युक्ष्य तैर्जलैः । गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतन्द्रितः ॥८ ॥ एको लिङ्गे करे तिस्र उभयोर्मृद्द्वयं स्मृतम् । पञ्चापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः ॥९ ॥ एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं

हुए गांव से बाहर पूर्व तथा उत्तर दिशा में जावे ॥५ ॥ हमेशा दिन में अथवा सांयकाल को कान पर जनेऊ चढ़ाकर पृथ्वी पर तृणों को बिछा कर सिर को कपड़े से ढंक कर ॥६ ॥ फिर मुंह को यत्नपूर्वक बन्द कर थूक तथा श्वास के रोक कर मल और मूत्र का त्याग करे। रात्रि के समय में दक्षिण मुख बैठ कर मल मूत्र का त्याग करे ॥७ ॥ अपने को शुद्ध कर उठे तथा मृत्तिका और जल से सावधानी से धोकर दुर्गन्ध को नष्ट करे तथा शौच क्रिया पूर्ण करे ॥८ ॥ एक बार गुहा में, तीन बार हाथ में, फिर शिशन तथा हाथ में दो-दो बार, पांच गुदा में और दस बार बायें हाथ में और दोनों हाथों में सात बार मिट्टी लगाकर अच्छी तरह जल से धोवे ॥९ ॥ यह शौच विधि गृहस्थों के लिये कही गयी है, ब्रह्मचारियों को दूनी, वानप्रस्थ को तिगुनी और संन्यासियों को चौगुनी अधिक

ब्रह्मचारिणः। वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनां च चतुर्गुणम्। यद्दिवा विहितं शौचं तदर्द्धं निशि कीर्तितम् ॥१०॥ तदर्द्धमातुरे प्रोक्तातुरस्यार्द्धमध्वनि। शौचकर्मविहीनस्य सकला निष्फलाः क्रियाः ॥११॥ मुखशुद्धिविहीनस्य न मन्त्राः फलदायकाः। दन्त-जिह्वाविशुद्धिं च ततः कुर्यात्प्रयत्नतः ॥१२॥

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजापशुवसूनि च। ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥१३॥ इति मन्त्रं समुच्चार्य द्वादशाङ्गुलमानतः। समिधा क्षीरवृक्षस्य

शुद्धि करनी चाहिये। जो शुद्धि की विधि दिन में कही गई है उससे आधी शुद्धि रात में होनी चाहिये ॥१०॥ इससे भी आधी आतुर और इससे भी आधी विधि यात्री को करनी चाहिये। शौच कर्म से रहित मनुष्य की समस्त क्रियाएं निष्फल होती हैं ॥११॥ जो मनुष्य मुखशुद्धि (दातौन) नहीं करता उसके सब मन्त्र निष्फल हो जाते हैं। अतएव दाँत और जीभ को यत्नपूर्वक स्वच्छ करना चाहिये ॥१२॥

"हे वनस्पति! तू आयु, बल, कीर्ति, तेज, प्रजा, पशु, सम्पत्ति, ब्रह्म, ज्ञान, बुद्धि, विद्या हमको दे" यह मन्त्र पढ़कर दातौन वृक्ष से ग्रहण करे ॥१३॥ यह मन्त्र कह कर दूध वाले वृक्ष से

क्षयाहोपोषणं विना ॥१४॥ प्रतिपद्दर्शनवमीषष्ठी चार्कदिने तथा। चन्द्रसूर्योपरागे च न कुर्याद्दन्तधावनम् ॥१५॥ कण्टकीवृक्षकार्पासीनिर्गुण्डीब्रह्मवृक्षकान्। वटैरण्ड-विगन्धाद्यान् वर्जयेद् दन्तधावने ॥१६॥ ततो विष्णो शिवस्यापि गृहं गच्छेत्प्रसन्नधीः। पुष्पगन्धान् सताम्बूलान् गृहीत्वा भक्तितत्परः ॥१७॥ तत्र देवस्य पाद्यादीनुपचारान् पृथक्-पृथक्। कृत्वा स्तुत्वा पुनर्गत्वा कुर्याद् गीतादि-मङ्गलम् ॥१८॥ तालवेणु-मृदङ्गादिध्वनियुक्तान्सनर्तकान्। पुष्पैर्गन्धैः सताम्बूलैर्गायकानपि चार्चयेत् ॥१९॥

द्वादश अंगुल दातौन लेकर करे और श्राद्ध और व्रत के दिन न करे ॥१४॥ प्रतिपदा, अमावस्या, नवमी, छठ, रविवार, चन्द्र और सूर्य ग्रहण में दन्तधावन नहीं करना चाहिये ॥१५॥ कंटीले पेड़, कपास, संभाल, पीपल, बरगद, रेड़ और निर्गन्ध वृक्षों की दातौन नहीं करे ॥१६॥ तत्पश्चात् फूल, माला, चन्दन और पान इत्यादि पूजन सामग्री लेकर प्रसन्न मन हो भक्ति पूर्वक विष्णु भगवान् अथवा शिवजी के मन्दिर में जावे ॥१७॥ वहां देवताओं का अर्घ्य आचमनीय आदि वस्तुओं से अलग-अलग पूजन कर प्रार्थना तथा प्रणाम कर नृत्यगीतादि मङ्गल कृत्य करे ॥१८॥ फिर ताल, वेणु, मृदङ्ग आदि को बजावे, गावे और नर्तकों के साथ नाचे, फिर माला, चन्दन, ताम्बूलादिकों से

देवालये गीतपरा यतस्ते विष्णुमूर्तयः। तपांसि यज्ञदानानि कृतादिषु जगद्गुरोः ॥२०॥ तुष्टिदानि कलौ यस्माद्भक्त्या गानं प्रशस्यते। क्व त्वं वससि देवेश मया पृष्टस्तु पार्थिव। विष्णुरेवं तदा प्राह मद्भक्तिपरितोषितः ॥२१॥ नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च। मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥२२॥ तेषां पूजादिकं गन्धपुष्पाद्यैः क्रियते नरैः। तेन प्रीतिं परां यामि न तथा मत्प्रपूजनात् ॥२३॥

उन गायकों का भी पूजन करे जो गाने आये हों ॥१९॥ क्योंकि देवस्थान में गाने वाले भी साक्षात् विष्णु की ही मूर्ति हैं, ये लोग सतयुगादिकों में विष्णु भगवान् को तपस्या, योग और दान द्वारा प्रसन्न करते थे, किन्तु कलियुग में अनुराग सहित भगवद्गुणगान ही भगवान् को प्रसन्न करने के लिये प्रधान माना गया है। हे राजन्! मैंने एक बार विष्णु भगवान् से पूछा था कि आप अधिकतर कहाँ रहते हैं? ॥२०-२१॥ यह सुनकर विष्णु भगवान् ने कहा—हे नारद! मैं वैकुण्ठ में अथवा योगियों के हृदय में ही नहीं रहता, अपितु जहां मेरे भक्त मेरा गुणगान करते हैं वहां मैं अवश्य रहता हूं ॥२२॥ जो प्राणी चन्दन मालादिकों से हमारे भक्तों का पूजन करते हैं उससे अधिक जैसी प्रीति होती है वैसी प्रीति मेरे पूजन से भी नहीं हो सकती ॥२३॥ जो मूर्ख पुराणों की कथा तथा मेरे भक्तों

मत्पुराणकथां श्रुत्वा मद्भक्तानां च गायनम्। निन्दन्ति ये नराः मूढास्ते मद्द्वेष्याः भवन्ति हि ॥२४॥ शिरीषोन्मत्तगिरिजामल्लिकाशाल्मली भवैः। अर्कजैः कर्णिकारैश्च विष्णुर्नार्च्च्य स्तथाक्षतः ॥२५॥ जपाकुन्दशिरीषैश्च यूथिकामालतीभवैः। केतकी भवपुष्पैश्च नैवार्च्च्यः शंकरस्तथा ॥२६॥ गणेशं तुलसीपत्रैः दुर्गां नैव तु दूर्वया। मुनिपुष्पैस्तथा सूर्यं लक्ष्मीकामो न चार्चयेत् ॥२७॥ येभ्यो यानि प्रशस्तानि पूजायां
का कीर्तन सुनकर उसकी निन्दा करते हैं, वे मेरे शत्रु सदृश हैं ॥२४॥ शिरीष, धतूरा, गिरिजा, चमेली, केसर, कन्दार, मंदार तथा कतइल के फूल और अक्षतों से विष्णु भगवान् की पूजा नहीं करनी चाहिये ॥२५॥ आढ़उल, कुन्द, शिरीष, जूही, मालती, केवड़ा के पुष्पों से शिवजी का पूजन नहीं करना चाहिये ॥२६॥ लक्ष्मी की अभिलाषा करने वाले पुरुष को चाहिये कि तुलसीपत्र से गणेशजी की, दूर्वा से दुर्गाजी की, अगस्त्य के फूल से सूर्यनारायण की पूजा न करे ॥२७॥ जिन देवताओं के लिये पूजा में जो फूल निर्दिष्ट हैं, उन्हीं से उनका पूजन करे। इस प्रकार पूजन समाप्त करने के पश्चात् देवाधिदेव विष्णु भगवान् से क्षमा प्रार्थना करे ॥२८॥ हे सुरेश्वर! हे देव! मेरे पास न मन्त्र है और न क्रिया, भक्ति से भी मैं हीन हूं जो कुछ भी आपकी पूजा मैंने की है आप

सर्वदैव तु। एवं पूजाविधिं कृत्वा देवदेवं क्षमापयेत् ॥२८ ॥ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर। यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥२९ ॥ ततः प्रदक्षिणां कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य च। पुनः क्षमाप्य देवेशं गायनाद्यं समाचरेत् ॥३० ॥ विष्णोः शिवस्यापि च पूजनं ये कुर्वन्ति सम्यङ्निशि कार्तिकस्य। विधूतपापाः सह पूर्वजैस्ते प्रयान्ति विष्णोर्भवनं मनुष्याः ॥३१ ॥

हमारी उस पूजा को पूर्ण करें ॥२९ ॥ इतना कहने के बाद परिक्रमा करके दण्डवत् प्रणाम कर पुनः क्षमा प्रार्थना करके गायन, कीर्तन आदि करना चाहिये ॥३० ॥ जो मनुष्य शिव और विष्णु भगवान् की विधिपूर्वक कार्तिक मास की रात्रि में पूजा करते हैं, वे पवित्रात्मा होकर अपने पूर्व पुरुषों के साथ विष्णुलोक को जाते हैं ॥३१ ॥

श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये कार्तिक व्रतकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥५ ॥



अथ षष्ठोऽध्यायः

नारद उवाच—नाडीद्वयावशिष्टायां रात्र्यां गच्छेज्जलाशयम्। तिलदर्भाक्षतैः पुष्पगन्धाद्यैः सहितः शुचिः ॥१॥ मानुषे देवखाते च नद्यामथ च सङ्गमे। क्रमाद्दशगुणं स्नानं तीर्थेतद्द्विगुणं स्मृतम् ॥२॥ विष्णुं स्मृत्वा ततः कुर्यात् सङ्कल्पं स्नपनस्य च। तीर्थादिदेवताभ्यश्च क्रमादर्घ्यादि दापयेत् ॥३॥ अर्घ्यमन्त्रः—नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने। नमस्तेऽस्तु हृषीकेश गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥४॥ वैकुण्ठे च प्रयागे च

नारदजी ने कहा—जब दो घड़ी रात अवशेष रहे तब तिल, कुश, अक्षत, चन्दनादि लेकर शुद्ध होकर जलाशय पर जावे ॥१॥ नहर की अपेक्षा क्रम से दसगुना झरना में, झरना से दसगुना नदी में और नदी से दसगुणा सङ्गम पर स्नान करने से जो फल कहा है और तीर्थ में स्नान करने से इनका दूना फल कहा गया है ॥२॥ स्नान के पूर्व विष्णु भगवान् का ध्यान करके स्नानार्थ सङ्कल्प करे फिर तीर्थ में उपस्थित देवताओं को क्रमशः अर्घ्य, पाद्य, आचमनीयादि देवे ॥३॥ अर्घ्य मन्त्रार्थ "हे कमलनाथ! आपको नमस्कार है। हे जलशायी भगवान्! आपको नमस्कार है। हे हृषीकेश!

तथा बदरिकाश्रमे। यतो विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा संनिदधे पदम् ॥५ ॥ अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। तैरेव सहितः सम्यङ् मुनिर्वेदमखान्वितैः ॥६ ॥ कार्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातः स्नानं जनार्दन। प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर यथाविधिः ॥७ ॥ ध्यात्वा नत्वा च देवेशं जलेऽस्मिन् स्नातुमुद्यतः। तव प्रसादात्पापं मे दामोदर विनश्यतु ॥८ ॥ अर्घ्यमन्त्रः—व्रतिनः कार्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥९ ॥ नित्ये नैमित्तिके कृष्ण कार्तिके पापनाशने। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं

आपको प्रणाम है, मेरे दिये हुए अर्घ्य को आप ग्रहण करें ॥४ ॥'' वैकुण्ठ, प्रयाग और बदरिकारण्य में जहां कहीं विष्णु भगवान् गये वहां विष्णु भगवान् ने तीन प्रकार से अपना पैर रखा था ॥५ ॥ अतएव जहां कहीं विष्णु भगवान् ने अपना चरण रखा, वहां पर ऋषि, वेद, यज्ञों के सहित समस्त देवता मेरी रक्षा करते रहें ॥६ ॥ हे जनार्दन! हे दामोदर! हे देवेश! आपको प्रसन्न करने के लिये मैं विधिवत् कार्तिक में प्रातः स्नान करूंगा ॥७ ॥ हे दामोदर! मैं आपका ध्यान और आपको प्रणाम करके इस जगह जल में स्नान करने के लिये जा रहा हूं। आपकी कृपा से मेरे समस्त पाप नष्ट हो जावें ॥८ ॥ हे हरे! कार्तिक मास में व्रत तथा विधिपूर्वक स्नान करने वाला मैं अर्घ्य देता हूं, आप

दानवेन्द्रनिषूदन ॥१०॥ स्मृत्वा भागीरथीं विष्णुं शिवं सूर्यं जले विशेत्। नाभिमात्रे ततस्तिष्ठेद् व्रती स्नायाद्यथाविधिः ॥११॥ तिलामलकचूर्णेन गृही स्नानं समाचरेत्। विधवास्त्रीयतीनां तु तुलसीमूलमृत्स्नया ॥१२॥ सप्तमीदर्शनवमीद्वितीयादशमीषु च। त्रयोदश्यां न वै स्नायात् धात्रीफलतिलैः सह ॥१३॥ आदौ कुर्यान् मलस्नानं मन्त्रस्नानं ततः परम्। स्त्रीशूद्राणां न वेदोक्तैर्मन्त्रै स्तेषां पुराणजैः ॥१४॥

राधिका के साथ ग्रहण करें ॥९॥ हे कृष्ण! हे प्रबल राक्षसों का नाश करने वाले भगवन्! हे पापनाशक! इस कार्तिक मास में नित्य-नैमित्तिक कर्मों के द्वारा दिये हुए मेरे इस अर्घ्य को आप स्वीकार करें ॥१०॥ कार्तिक स्नान का व्रत करने वाला भागीरथी (गङ्गा), विष्णु, शङ्कर तथा सूर्य का ध्यान करके जल में प्रवेश करे और नाभिपर्यन्त जल में खड़ा होकर विधिपूर्वक स्नान करे ॥११॥ गृहस्थ तिल और आँवले का चूर्ण लगाकर, विधवा स्त्री तथा यति तुलसी के मूल की मृत्तिका लगाकर स्नान करे ॥१२॥ सप्तमी, अमावस्या, नवमी, त्रयोदशी, द्वितीया, दशमी तिथियों को आंवला तथा तिलसे स्नान नहीं करना चाहिये ॥१३॥ प्रथम मलस्नान करके पुनः मन्त्रस्नान करे। स्त्री और शूद्र को पौराणिक मन्त्रों से स्नान करना चाहिये ॥१४॥

स्नानमन्त्राः–त्रिधाऽभूद्देवकार्यार्थं यः पुरा भक्तभावनः। स विष्णु सर्वपापघ्न पुनातु कृपयाऽत्र माम् ॥१५॥ विष्णोराज्ञामनुप्राप्य कार्तिकव्रतकारकान्। रक्षन्ति देवास्ते सर्वे मां पुनन्तु सवासवाः ॥१६॥ वेदमन्त्राः सबीजाश्च सरहस्याः मखान्विताः। कश्यपाद्याश्च मुनयो मां पुनन्तु सवासवाः ॥१७॥ गङ्गायाः सरितः सर्वास्तीर्थानि जलदा नदाः। ससप्तसागराः सर्वे मां पुनन्तु जलाशयाः ॥१८॥ पतिव्रता स्त्वादित्याद्याः यक्षाः सिद्धाः सपन्नगाः। ओषध्यः पर्वताश्चापि मां पुनन्तु त्रिलोकजाः ॥१९॥ एभिः

स्नानार्थ मन्त्र–जिस भक्त-भावन-भगवान् ने देवताओं के कार्य के लिये तीन प्रकार का रूप धारण किया था, वे ही पापनाशक विष्णु भगवान् अपनी कृपा से मुझे पवित्र बनावें ॥१५॥ विष्णु की आज्ञा से कार्तिक व्रत करने वालों की समस्त इन्द्रादिक देवता रक्षा करते हैं, अतः वे सब मुझको पवित्र करें ॥१६॥ बीजों, रहस्यों तथा यज्ञों सहित समस्त वेदों के मन्त्र, कश्यपादिक ऋषि, इन्द्रादि समस्त देवता मुझको पवित्र करें ॥१७॥ गङ्गादि सभी नदियां, संपूर्ण तीर्थ, सातों समुद्र और समस्त जलाशय हमको पवित्र करें॥१८॥ अदिति आदि सती नारियां, यक्ष, सिद्ध, सर्प, सब औषधियां, तीनों लोक के पर्वत मुझे पवित्र करें॥१९॥ इन मन्त्रों को कहकर स्नान करने के

स्नात्वा व्रती मन्त्रैर्हस्तन्यस्तपवित्रकः। देवर्षिमानवान् पितृन् तर्पयेच्च यथाविधिः ॥२०॥ यावन्तः कार्तिके मासि वर्तन्ते पितृतर्पणे। तिलां तत्संख्यकाब्दानि पितरः स्वर्गवासिनः ॥२१॥ ततो जलाद्विनिष्क्रम्य शुचिर्वस्त्रावृतो व्रती। प्रातःकालोदितं कर्म समाप्याच्र्यो हरिःपुनः ॥२२॥ तीर्थाधिदेवान् संस्मृत्य पुनरर्घ्यं प्रदापयेत्। गन्धपुष्पफलैर्युक्तो भक्त्या तत्परमानसः ॥२३॥ अर्घ्यमन्त्रः—नित्ये नैमित्तिके कृष्ण कार्त्तिके पापनाशने। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥२४॥ ततश्च ब्रह्मणान्

पश्चात् व्रती हाथ में पवित्री धारण करके देवता, ऋषि, मनुष्य तथा पितरों का विधिवत् तर्पण करे ॥२०॥ कार्तिक मास में पितृ तर्पण करते समय जितने भी तिल तर्पण में रहते हैं उतने वर्षपर्यन्त व्रती के पितृगण स्वर्ग में आवास करते हैं ॥२१॥ तत्पश्चात् व्रत करने वाला जल से निकले, शुद्ध कपड़े पहने और प्रातःकाल के सब कृत्यों से निवृत्त होकर पुनः विष्णु भगवान् का पूजन करना चाहिये ॥२२॥ समस्त तीर्थों के सम्पूर्ण देवताओं का स्मरण करके भक्तिपूर्वक सावधान होकर चन्दन, फूल और फल सहित विष्णु भगवान् को फिर अर्घ्य देवे ॥२३॥ नित्ये नैमित्तिके कृष्ण कार्तिके पापनाशने। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे। अर्घ्य मन्त्र का अर्थ—नित्य और

भक्त्या पूजयेद्वेदपारगान्। गन्धैः पुष्पैः सताम्बूलैः प्रणमेच्च पुनः पुनः ॥२५ ॥ तीर्थानि दक्षिणे पादे वेदास्तन्मुखमाश्रिताः। सर्वाङ्गेष्वाश्रिताः देवाः पूजितास्ते तदर्चया ॥२६ ॥ अव्यक्तरूपिणो विष्णोः स्वरूपं ब्रह्मणा भुवि। नावमन्या नो विरोध्याः कदाचिच्छु-भमिच्छता ॥२७ ॥ ततो हरिप्रियां देवीं तुलसीमर्चयेद् व्रती। प्रदक्षिणां नमस्कारान् कुर्यादेकाग्रमानसः ॥२८ ॥ देवैस्त्वं निर्मिता पूर्वमर्चितासि मुनीश्वरैः। नमो नमस्ते

नैमित्तिक कर्मरूप इस पाप नाशक कार्तिक स्नान के व्रत के निमित्त, हे विष्णु भगवान्! राधा के साथ आप मेरे दिये अर्घ्य को ग्रहण करें ॥२४ ॥ ततः चन्दन, फूल और ताम्बूलादिकों से वेद के पारंगत ब्राह्मणों का श्रद्धापूर्वक पूजन करे और बारम्बार साष्टाङ्ग प्रणाम करे ॥२५ ॥ ब्राह्मणों के दाहिने पैर में तीर्थ रहते हैं, मुख में वेद और समस्त अङ्गों में देवतागण निवास करते हैं। ब्राह्मणों की पूजा करने से उन सभी की पूजा हो जाती है ॥२६ ॥ इस भूतल में विष्णु भगवान् गुप्त रूप से ब्राह्मण के स्वरूप में निवास करते हैं। अपने कल्याण की कामना रखने वाले लोग इनका न अपमान करें और न इनके साथ विरोध करें ॥२७ ॥ फिर एकान्त चित्त से विष्णु भगवान् की प्यारी तुलसी का पूजन करके उनकी परिक्रमा करें तथा उन्हें प्रणाम करें। देवैस्त्वं निर्मिता पूर्वमर्चितासि

तुलसी पापं हर हरिप्रिये ॥२९ ॥ ततो विष्णुकथां श्रुत्वा पौराणकीं स्थिरमानसः । पुनस्तान् ब्राह्मणांश्चैव पूजयेद् भक्तिमान् व्रती ॥३० ॥ एवं सर्वविधिं सम्यक् पूर्वोक्तं भक्ति-मान्नरः । यः करोति स लभते नारायणसलोकताम् ॥३१ ॥ रोगापहं पातकनाशकृत्परं सद्बुद्धिदं पुत्रधनादिसाधकम् । मुक्तेर्निदानं न हि कार्तिकव्रताद्विष्णु-प्रियादन्यदिहास्ति शोभनम् ॥३२ ॥

मुनीश्वरैः। नमो नमस्ते तुलसी पापं हर हरिप्रिये ॥२८ ॥ हे देवि ! हे तुलसी ! देवताओं ने ही प्राचीन काल से तुम्हारा निर्माण किया है और ऋषियों ने तुम्हारा पूजन किया है, हे विष्णु की प्यारी तुलसी ! आपको प्रणाम है, आप मेरे सब पापों का नाश करो ॥२९ ॥ इसके पश्चात् स्थिर चित्त से विष्णु भगवान् की पुराणोक्त कथा को सुनना चाहिये, और भक्तिपूर्वक वेदज्ञ ब्राह्मणों का पूजन करना चाहिये ॥३० ॥ इस प्रकार भक्तिपूर्वक जो लोग पूर्वोक्त विधान से सब कृत्य करता है उसे विष्णु लोक प्राप्त होता है ॥३१ ॥ समस्त रोगों तथा पापों का नष्ट करने वाला, मनुष्य को श्रेष्ठ बुद्धि देने वाला, पुत्र-धनादि का साधन, मुक्तिदायककार्तिक के व्रत के अतिरिक्त कोई उत्तम व्रत इस संसार में नहीं है ॥३२ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमासमाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥६ ॥

सातवां अध्याय

नारद उवाच—कार्तिकव्रतिनां पुंसां नियमा ये प्रकीर्तिताः। तान् शृणुष्व महाराज कथ्यमानान् समासतः ॥१॥ सर्वामिषाणि मांसं च क्षौद्रं सौवीरकं तथा। राजिकोन्मादकं चापि नैवाद्यात्कार्तिकव्रती ॥२॥ परान्नं च परद्रोहं परदेशगतं तथा। तीर्थं विना सदैवेह वर्जयेत् कार्तिक-व्रती ॥३॥ देववेदद्विजातीनां गुरुगोव्रतिनां तथा। स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेत्कार्तिकव्रती ॥४॥ द्विदलं च तिलं तैलं प्रक्वान्नं मूल्यदूषितम्। भावदुष्टं

नारदजी ने कहा—हे राजन्! कार्तिक मास का व्रत करने वालों के नियम सुनिये। मैं संक्षेप में कहता हूं ॥१॥ जो व्यक्ति कार्तिक मास का व्रत करता हो वह सब तरह के आमिष, उड़द, मधु, राई, खटाई तथा मदकारी वस्तुओं का भक्षण न करे ॥२॥ उक्त व्रत करने वाला दूसरे का अन्न ग्रहण न करे, किसी से विद्वेष न करे तथा तीर्थ के अतिरिक्त विदेश न जावे ॥३॥ देवता, देव, ब्राह्मण, गुरु, गौ, व्रती, नारी, राजा तथा गुरुजनों की निन्दा न करे ॥४॥ कार्तिक मास का व्रत करने वाला दाल, तिल, तैल, पक्वान्न, क्रय किया हुआ पका भोजन न ग्रहण करे, निन्द्य भावना, कुवाच्य का

शब्ददुष्टं वर्जयेत् कार्तिकव्रती ॥५ ॥ प्राण्यङ्ग मामिषं चूर्णं फलं जम्बीरमामिषम्। धान्ये मसूरिका प्रोक्ता अन्नं पर्युषितं तथा ॥६ ॥ अजागोमहिषीक्षीरादन्यद् दुग्धादि चामिषम्। द्विजक्रीता रसाः सर्वे लवणं भूमिजं तथा ॥७ ॥ ताम्रस्थितं पञ्चगव्यं जलं पल्वलसंस्थितम्। आत्मार्थं पाचितं चान्नमामिषं चोच्यते बुधैः ॥८ ॥ ब्रह्मचर्यमधःशय्या पत्रावल्यां च भोजनम्। चतुर्थयामे भुञ्जानः कुर्यादेवं सदा व्रतम् ॥९ ॥ नरकस्य चतुर्दश्यां तैलाभ्यङ्गं च कारयेत्। अन्यत्र कार्तिके मासे तैलस्नानं विवर्जयेत् ॥१० ॥

त्याग करे ॥५ ॥ किसी भी जीव का मांस, चूना, जम्बीरी नींबू, मसूर, बासी तथा जूठे अन्न का परित्याग करे ॥६ ॥ बकरी, गाय तथा भैंस के दूध के अतिरिक्त किसी अन्य पशु का दूध आमिष समझे। ब्राह्मण द्वारा क्रय किये गये सभी रस (गुड़ आदि) साँभर नमक आदि का परित्याग करे ॥७ ॥ तांबे के पात्र में रखा हुआ पञ्चगव्य, अत्यन्त लघु घड़े का पानी, केवल अपने ही लिये पक्व अन्न आमिष कहा जाता है ॥८ ॥ कार्तिक मास का व्रती सदा ब्रह्मचर्य से रहे, पृथ्वी पर शयन करे और दिन के चौथे पहर को केवल एक बार पत्तल में खावें ॥९ ॥ कार्तिक का व्रती नरकचतुर्दशी को तेल लगावे। अतिरिक्त दूसरी तिथियों में तेल लगाकर स्नान करना त्याज्य है ॥१० ॥ कार्तिक

शृङ्गं पलाण्डुं वृन्ताकं छत्राकं गुञ्जरं तथा। नालिकां मूलकं चैव वर्जयेत्कार्तिक-व्रती ॥११॥ अलांबु चापि वृन्ताकं कूष्माण्डं बृहतीफलम्। श्लेष्मातकं कपित्थं च वर्जयेद् वैष्णवव्रती ॥१२॥ रजस्वलां त्यजेन्म्लेच्छपतितव्रतकैस्तथा। द्विजद्विड्वेद-बाह्यैश्च न वदेत्सर्वदा व्रती ॥१३॥ एभिर्दृष्टं च काकैश्च सूतकान्नं च यद्भवेत्। द्विपाचितं च दग्धान्नं नैवाद्याद्वैष्णवव्रती ॥१४॥ एतानि वर्जयेन्नित्यं व्रती सर्वव्रतेष्वपि। कृच्छ्रादींश्च प्रकुर्वीत स्वशक्त्या विष्णुतुष्टये ॥१५॥

व्रती मनुष्य सिंघाड़ा, कोहड़ा, प्याज, भंटा, गाजर, मूली, छत्राक इन सब वस्तुओं को ग्रहण न करे ॥११॥ लौकी, कोहड़ा, कटोरी का फल, तरबूज तथा कैथ इनको कार्तिक मास का व्रती त्याग दे ॥१२॥ व्रती मासिक धर्म के समय स्त्री से, चण्डाल, पापी, ब्राह्मणद्रोही और नास्तिकों से सम्भाषण न करे ॥१३॥ उपर्युक्त मनुष्यों, कुत्तों तथा कौवों द्वारा दृष्ट पका भोजन, सूतक के समय का पका भोजन, दो बार पकाया हुआ, जला हुआ अन्न न खावे। अपनी शक्ति के अनुसार कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत श्रीविष्णु भगवान् की प्रसन्नता हेतु करे और पूर्व वर्णित नियमों का पालन करे ॥१४–१५॥

क्रमात्कूष्माण्डबृहतीतरुणीमूलकं तथा। श्रीफलं च कलिङ्गं च फलं धात्रीभवं तथा ॥१६ ॥ नारिकेलमलांबुञ्च पटोलं बदरीफलम्। चर्मवृन्ताकलवलीशाकं तुलसिजं तथा ॥१७ ॥ शाकान्येतानि वर्ज्यांनि क्रमात्प्रतिपदादिषु। धात्रीफलं रवौ तद्वद्वर्जयेद्धि तथा व्रती ॥१८ ॥ एभ्योऽन्यद्वर्जयेत्किञ्चिद्विष्णुव्रतपरायणः। तत्पुनर्ब्रह्मणे दत्त्वा भक्षयेत्सर्वदा व्रती ॥१९ ॥ एवमेव हि माघेऽपि कुर्याच्चनियमान् व्रती। हरेश्च जागरं

कार्तिक व्रत करने वाला प्राणी प्रतिपदा को कुम्हड़ा, द्वितीय को कटहर, तृतीया को तरुणी स्त्री, चतुर्थी को मूली, पञ्चमी को बेल, षष्ठी को तरबूज, सप्तमी को आंवला, अष्टमी को नारियल, दशमी को लौकी, एकादशी को परबल, द्वादशी को बेर, त्रयोदशी को भंटा, चतुर्दशी को गाजर तथा पूर्णिमा को शाक ये वस्तुएं, तथोक्त तिथियों में न खाएं और रविवार को आंवला का भक्षण न करे ॥१६-१८॥ व्रती इन शाकों में से या और वर्जित शाकों में कोई शाक खाना चाहे तो ब्राह्मण के देकर खावे ॥१९॥ यही विधान माघ मास के व्रत के लिये भी है। देवोत्थायिनी एकादशी में पूर्वोक्त विधानानुसार नृत्य, जागरण, गायनवादन आदि करे ॥२०॥ इस प्रकार विधिवत् व्रत करने वाले व्रती को देखकर यम के दूत जैसे सिंह की गर्जना से हाथी भाग जाते हैं, उसी तरह वहां से

तत्र प्रबोधोक्तं च कारयेत् ॥२०॥ यथोक्तकारिणं दृष्ट्वा कार्तिकव्रतिनं नरम्। यमदूताः पलायन्ते गजाः सिंहार्दिता इव ॥२१॥ वरं विष्णुव्रतं ह्येतत् न यज्ञशत-याजकाः। यज्ञकृत्प्राप्नुयात् स्वर्गं वैकुण्ठं कार्तिकव्रती ॥२२॥ भुक्तिमुक्तिप्रदानीह यानि क्षेत्राणि भूतले। वसन्ति तानि तद्देहे कार्तिकव्रतकारिणः ॥२३॥ दुःस्वप्नं दुष्कृतं किञ्चिन्मनो वाक्कायसम्भवम्। कार्तिकव्रतिनं दृष्ट्वा विलयं याति तत्क्षणात् ॥२४॥ कार्तिकव्रतिनः पुंसां विष्णुवाक्यप्रणोदिताः। रक्षां कुर्वन्ति शक्राद्या राजानं किङ्करा

भाग जाते हैं ॥२१॥ यह कार्तिक व्रत सब व्रतों में श्रेष्ठ है। इसके अतिरक्ति जितने व्रत यज्ञादि हैं वे शत संख्या होकर भी इसकी तुलना नहीं कर सकते। क्योंकि यज्ञादि करने वाले प्राणी केवल स्वर्ग में ही निवास करते हैं, किन्तु कार्तिकव्रती उससे श्रेष्ठ वैकुण्ठ लोक में जाते हैं ॥२२॥ इस जगत् में भुक्ति मुक्ति दाता जितने भी पुण्य क्षेत्र हैं वे सब कार्तिकव्रती के शरीर में निवास करते हैं ॥२३॥ बुरे स्वप्न मनसा, वाणी और कर्मणा द्वारा किसी प्रकार का भी किया गया पाप हो वह सब कार्तिक व्रत करने वाले प्राणी को देखते ही नष्ट हो जाते हैं ॥२४॥ जिस प्रकार राजा की रक्षा करके उनके सेवक अंगरक्षक लोग करते हैं उसी भांति कार्तिक व्रत करने वाले की रक्षा विष्णु भगवान की आज्ञा से

यथा ॥२५ ॥ विष्णुव्रतकरो नित्यं यत्र तिष्ठति पूजितः । ग्रहभूतपिशाचाद्याः नैव तिष्ठन्ति तत्र वै ॥२६ ॥ कार्तिकव्रतिनः पुण्यं यथोक्तव्रतकारिणः । न समर्थो भवेद्वक्तुं ब्रह्मापि हि चतुर्मुखः ॥२७ ॥ विष्णुव्रतं सकलकल्मषनाशनं च सत्पुत्रपौत्रधनधान्यवि-वृद्धिकारि । ऊर्जव्रतं सनियमं कुरुते मनुष्यः किं तस्य तीर्थपरिशीलनसेवया च ॥२८ ॥

इन्द्रादिक देवता करते हैं ॥२५ ॥ विष्णु भगवान् का व्रत (कार्तिक व्रत) करने वाला मनुष्य जहां कहीं भी वर्तमान रहता है वहां पूजित होता है। वहां पर ग्रह, भूत और पिशाच आदि कोई भी नहीं रहने पाते ॥२६ ॥ विधि-विधान सहित कार्तिक व्रत करने वाले मनुष्य के पुण्यों का वर्णन चार मुख वाले ब्रह्मा जी कहने में असमर्थ हैं ॥२७ ॥ यह दामोदर (कार्तिक) व्रत सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाला, पुत्र, पौत्र, धन तथा धान्य को उन्नत करने वाला है। यह कार्तिकव्रत जो मनुष्य करता है उसको तीर्थ में जाने या तीर्थ या तीर्थ की सेवा करने से क्या उद्देश्य? उसको सब पुण्य फल कार्तिक व्रत से ही प्राप्त हो जाते हैं ॥२८ ॥

श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये कार्तिकव्रतकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥७ ॥



आठवां अध्याय

नारद उवाच—अथोजव्रतिनः सम्यगुद्यापनविधिं नृप। तं शृणुष्व मयाख्यातं सविधानं समासतः ॥१ ॥ ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती। व्रतपूर्णफलार्थं च विष्णुप्रीत्यर्थमेव च ॥२ ॥ तुलस्या उपरिष्टात्तु कुर्यान्मण्डपिकां तथा। सुतोरणां चतुर्द्वारां पुष्पचामरशोभिताम् ॥३ ॥ द्वारेषु द्वारपालांश्च पूजयेन्मृन्मयान् पृथक्। पुण्यशीलं

हे राजन्! अब मैं कार्तिक व्रत के अनुष्ठान में लगे हुए पुरुष के लिये उत्तम उद्यापन-विधि का संक्षेप से वर्णन करता हूं। तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। व्रती मनुष्य कार्तिक शुक्लपक्ष की चतुर्दशी को व्रत की पूर्ति तथा भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिये उद्यापन करे। तुलसी जी के ऊपर एक सुन्दर मण्डप बनाये, जिसमें चार दरवाज़े बने हों, उस मण्डप में सुन्दर बंदनवार लगाकर उसे पुष्पमय चँवर से सुशोभित करे। चारों दरवाज़ों पर पृथक्-पृथक् मिट्टी के चार द्वारपाल-पुण्यशील, सुशील, जय और विजय की स्थापना करके उन सबका पूजन करे। तुलसी के मूल भाग में वेदी पर सर्वतोभद्र मण्डल बनाये, जो चार रंगों से रञ्जित होकर सुन्दर शोभा सम्पन्न और अत्यन्त

सुशीलञ्च जयं विजयमेव च ॥४॥ तुलसीमूलदेशे च सर्वतोभद्रमुत्तमम्। चतुर्भि-र्वर्णकैः सम्यक् शोभाढ्यं समलङ्कृतम् ॥५॥ तस्योपरिष्टात्कलशं पञ्चरत्न-समन्वितम्। महाफलेन सहितं शुभ्रं वस्त्रं निधाय च ॥६॥ पूजयेत्तत्र देवेश शङ्खचक्र-गदाधरम्। कौशेयपीतवसनं युक्तं जलधिकन्यया ॥७॥ इन्द्रादिलोकपालांश्च मण्डले पूजयेद् व्रती। द्वादश्यां प्रतिबुद्धोऽसौ त्रयोदश्यां पुनः सुरैः ॥८॥ दृष्टोऽर्चितश्चतुर्दश्यां तस्मात्पूज्यस्तथाविह। तस्यामुपवसेद्भक्त्या शान्तः प्रयतमानसः ॥९॥ पूजयेद्देवदेवेशं

मनोहर प्रतीत होता हो। सर्वतोभद्र के ऊपर पञ्चरत्न युक्त कलश की स्थापना करे। उसके ऊपर नारियल का महान् फल रख दे। इस प्रकार कलश स्थापित करके उसके ऊपर समुद्रकन्या श्रीलक्ष्मीजी के साथ शङ्ख चक्र और गदा धारण करने वाले पीताम्बरधारी देवेश्वर दामोदर भगवान् (श्री विष्णु) की पूजा करे। सर्वतोभद्र के मण्डल में इन्द्र आदि लोकपालों का भी पूजन करना चाहिये। भगवान् द्वादशी को शयन से उठे, त्रयोदशी को देवताओं ने उनका दर्शन किया और चतुर्दशी को सबने उनकी पूजा की, इसीलिये इस समय भी उसी तिथि को इनकी पूजा की जाती है। उस दिन शान्त एवं शुद्धचित्त होकर भक्तिपूर्वक उपवास करना चाहिये तथा आचार्य की आज्ञा

सौवर्णं गुर्वनुज्ञया। उपचारैः षोडशभिर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः ॥१०॥ रात्रौ जागरणं कुर्यात् गीतवाद्यादिमङ्गलैः। गीतं कुर्वन्ति ये भक्त्या जागरे चक्रपाणिनः ॥११॥ जन्मान्तर-शतोद्भूतैर्मुक्तास्ते पापसञ्चयैः। नराणां जागरे विष्णोर्गीतनृत्यं प्रकुर्वताम् ॥१२॥ गोसहस्त्रं च ददतां समं फलमुदाहृतम्। गीतनृत्यादिकं कुर्वन् दर्शयन्कौतुकानि च ॥१३॥ पुरतो वासुदेवस्य रात्रौ यो जागृयाद्धरेः। पठन् विष्णुचरित्राणि यो रञ्जयति

से देवदेवेश्वर श्रीविष्णु की सुवर्णमयी प्रतिमा का षोडशोपचार द्वारा नाना प्रकार के भक्ष्य-भोज्य पदार्थ प्रस्तुत करते हुए पूजन करना चाहिये। रात्रि में गीत और वाद्य आदि माङ्गलिक उत्सवों के साथ भगवान् विष्णु के समीप जागरणकाल में भक्तिपूर्वक गान करते हैं, वे सौ जन्मों की पाप राशि से मुक्त हो जाते हैं। भगवान् विष्णु के निमित्त जागरण काल में गीत-वाद्य करने वालों तथा सहस्र गोदान करने वालों को भी समान फल की ही प्राप्ति बतलाई गयी है। जो रात्रि में वासुदेव के समक्ष जागरण करते समय भगवान् विष्णु के चरित्रों का पाठ करके वैष्णव पुरुषों का मनोरंजन करता है तथा मनमानी बातें नहीं करता, उसे प्रतिदिन कोटि तीर्थों के सेवन के समान पुण्य प्राप्त होता है। रात्रि जागरण के पश्चात् पूर्णिमा को प्रातःकाल अपनी शक्ति के अनुसार तीस या एक

वैष्णवान् ॥१४॥ मुखेन कुरुते वाद्यं स्वेच्छालापांश्च वर्जयेत्। भावैरेतैर्नरो यस्तु कुरुते हरिजागरम् ॥१५॥ दिने दिने तस्य पुण्यं तीर्थकोटिसमं स्मृतम्। ततस्तु पौर्णमास्यां वै सपत्नीकान् द्विजोत्तमान् ॥१६॥ त्रिंशन् मितानथैकं वा स्वशक्त्या च निमन्त्रयेत्। वरान् दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूपोऽभवद्यतः ॥१७॥ अस्यां दत्तं हुतं जप्तं तदक्षय्यफलं स्मृतम्। अतस्तान् भोजयेद्विप्रान् पायसान्नेन वै व्रती ॥१८॥ अतो देवा इति द्वाभ्यां जुहुयात्तिलपायसम्। प्रीत्यर्थं देवदेवस्य देवानां च पृथक् पृथक् ॥१९॥

सपत्नीक ब्राह्मण को भोजन के लिये निमन्त्रित करे। उस दिन किया हुआ दान, होम और जप अक्षय फल देने वाला माना गया है, अतः व्रती पुरुष खीर आदि के द्वारा ब्राह्मणों को भली-भांति भोजन कराये। **'अतो देवाः'** आदि दो मन्त्रों से देवदेव भगवान् विष्णु तथा अन्य देवताओं की प्रसन्नता के लिये पृथक्-पृथक् तिल और खीर की आहुति छोड़े। फिर यथाशक्ति दक्षिणा दे कर उन्हें प्रणाम करे। इसके बाद भगवान् विष्णु तथा तुलसी का पुनः पूजन करे । कपिला गाय की विधिपूर्वक पूजा करे और व्रत का उपदेश करने वाले सपत्नीक आचार्य का भी वस्त्र तथा

दक्षिणां च यथाशक्त्या प्रदद्यात्प्रणमेच्च तान्। पुनर्देवं समभ्यर्च्य देवांश्च तुलसीं तथा ॥२०॥ ततो गां कपिलां तत्र पूजयेद्विधिवद् व्रती। गुरुं व्रतोपदेष्टारं वस्त्रालङ्करणादिभिः ॥२१॥ सपत्नीकं समभ्यर्च्य तांश्च विप्रान् क्षमापयेत्। प्रार्थनामन्त्राः—युष्मत् प्रसादाद्देवेशः प्रसन्नोऽस्तु सदा मम ॥२२॥ व्रतादस्माच्च यत्पापं सप्तजन्मकृतं मया। तत्सर्वं नाशमायातु स्थिरा मे चास्तु सन्ततिः ॥२३॥ मनोरथाश्च

आभूषणों आदि के द्वारा पूजन करे। अन्त में सब ब्राह्मणों से क्षमा-प्रार्थना करे-'प्रियवरो! आप लोगों की कृपा से देवेश्वर भगवान् विष्णु मुझ पर सदा प्रसन्न रहें। मैंने गत सात जन्मों में जो पाप किये हों, वे सब इस व्रत के प्रभाव से नष्ट हो जायें। प्रतिदिन भगवान् के पूजन से मेरे सम्पूर्ण मनोरथ सफल हों तथा इस देह का अन्त होने पर मैं अत्यन्त दुर्लभ बैकुण्ठधाम को प्राप्त करूं।' इस प्रकार क्षमायाचना करके ब्राह्मणों को प्रसन्न करने के पश्चात् उन्हें विदा करे और गौ सहित भगवान् विष्णु की सुवर्णमयी प्रतिमा आचार्य को दान कर दे। तत्पश्चात् भक्त पुरुष सुहृदों और गुरुजनों के साथ स्वयं भी भोजन करे। कार्तिक हो या माघ, उसके लिये ऐसी ही विधि बतायी गयी है। जो मनुष्य इस प्रकार कार्तिक के उत्तम व्रत का पालन करता है, वह निष्पाप एवं मुक्त होकर

सफलाः सन्तु नित्यं ममार्चया। देहान्ते वैष्णवं स्थानं प्राप्नुया-दतिदुर्लभम् ॥२४॥
इति क्षमाप्य तान्सर्वान् प्रसाद्य च विसर्जयेत्। तामर्चां गुरवे दद्याद् गवा युक्तां सदा
व्रती ॥२५॥ ततः सुहृद्गणयुतः स्वयं भुञ्जीत भक्तिमान्। कार्तिके वाऽथ तपसि
विधिरेवंविधः स्मृतः ॥२६॥ एवं यः कुरुते सम्यक् कार्तिकस्य व्रतं नरः। विपाप्मा
सर्वकामाढ्यो विष्णुसान्निध्यगो भवेत् ॥२७॥ सर्वव्रतैः सर्वतीर्थैस्सर्वदानैश्च
यत्फलम्। तत्कोटिगुणितं ज्ञेयं सम्यगस्य विधानतः ॥२८॥ ते धन्यास्ते सदा पूज्यास्तेषां
च सफलो भवः। विष्णुभक्तिरताः ये स्युः कार्तिकव्रतकारिणः ॥२९॥ देहस्थितानि

भगवान् विष्णु की समीपता प्राप्त करता है। सम्पूर्ण व्रतों, तीर्थों और दानों से जो फल मिलता है, वही इस कार्तिक-व्रत का विधिपूर्वक पालन करने से करोड़ गुणा अधिक होकर मिलता है। जो कार्तिक-व्रत का अनुष्ठान करते हुए भगवान् विष्णु की भक्ति में तत्पर होते हैं, वे धन्य हैं, वे सदा पूज्य हैं तथा उन्हीं के जहां सब प्रकार के शुभ फलों का उदय होता है। देह में स्थित हुए पाप उस मनुष्य के भय से कांप उठते हैं और आपस में कहने लगते हैं–'अरे! यह तो कार्तिक का व्रत करने लगा, अब हम कहां जाएंगे।' जो कार्तिक-व्रत के इन नियमों को भक्तिपूर्वक सुनता तथा वैष्णव

पापानि कम्पं यान्ति च तद्भयात्। क्व यास्यामो भवत्येष यद्यूर्जव्रतकृन्नरः ॥३० ॥
इत्यूर्जव्रतनियमाञ्छृणोति भक्त्या यो वै तान् कथयति वैष्णवाग्रतोऽपि। तौ
सम्यग्व्रतनियमात्फलं भवेद्यत्तत्सर्वं कलुषविनाशनं लभेते ॥३१ ॥

पुरुष के आगे इनका वर्णन करता है, वे दोनों ही उत्तम व्रत करने का फल पाते हैं और उनका दर्शन करने से मनुष्यों के पापों का नाश हो जाता है ॥३१ ॥

श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये उद्यापनविधिकथनं नामाष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥८ ॥



नवमां अध्याय

पृथुरुवाच—यत्त्वया कथितं ब्रह्मन् व्रतमूर्जस्य विस्तरात्। तत्र या तुलसीमूले विष्णोः पूजा त्वयोदिता ॥१ ॥ तेनाहं प्रष्टुमिच्छामि माहात्म्यं तुलसीभवम्। कथं साऽतिप्रिया जाता देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥२ ॥ कथमेषा समुत्पन्ना कस्मिन् स्थाने च नारद। तद् ब्रूहि मे समासेन सर्वज्ञोऽसि मतो मम ॥३ ॥ नारद उवाच—शृणु राजन्नवहितो माहात्म्यं तुलसीभवम्। सेतिहासं पुरावृत्तं तत्सर्वं कथयामि ते ॥४ ॥ पुरा शक्रः शिवं

राजा पृथु ने पूछा—हे ब्रह्मन्! आपने कार्तिक-व्रत के विधान-वर्णन में तुलसी के मूल में विष्णु भगवान् की पूजन की विधि बताई है ॥१ ॥ अतः मैं तुलसी की महत्ता के विषय में पूछने की इच्छा करता हूं। तुलसी देवाधिदेव विष्णु भगवान् को कैसे इतनी प्यारी हुई ॥२ ॥ हे नारद! यह कैसे और कहां उत्पन्न हुई? आप सर्वज्ञ हैं कृपा कर यह कथा संक्षेप में कहिये ॥३ ॥ नारद जी ने कहा—हे राजन! आप सावधान होकर तुलसी जी की महत्ता तथा जन्म का प्राचीन इतिहास सुनिये, मैं कहता हूं ॥४ ॥ प्राचीन काल में सब देवगणों तथा रम्भादिक अप्सराओं से सेवित इन्द्रजी शंकर भगवान् के

द्रष्टुमगात्कैलासपर्वतम्। सर्वदेवपरिवृतो ह्यप्सरोगणसेवितः ॥५॥ यावद्गतः शिवगृहं तावत्तत्र स दृष्टवान्। पुरुषं भीमकर्माणं दंष्ट्रानयनभीषणम् ॥६॥ स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो क्व गतो जगदीश्वरः। एवं पुनः पुनः पृष्टः स तदा नोक्तवान् नृप ॥७॥ ततः क्रुद्धो वज्रपाणिस्तं निर्भर्त्स्य वचोऽब्रवीत्। रे मया पृच्छ्यमानोऽपि नोत्तरं दत्तवानसि ॥८॥ अतस्त्वां हन्मि वज्रेण कस्ते त्रातास्ति दुर्मते। इत्युदीर्य ततो वज्री वज्रेणाभ्यहनद्दृढम् ॥९॥ तेनास्य कण्ठे नीलत्वमगाद्वज्रश्च भस्मताम्। ततो रुद्रः प्रजज्वाल

दर्शनों के निमित्त कैलास पर्वत पर गये ॥५॥ वहां कैलास पर पहुंचते ही सम्मुख भयानक दाँत और मुखवाले भीमकर्मा पुरुष को देखा ॥६॥ इन्द्र ने उससे पूछा आप कौन हैं? जगदीश्वर शंकरजी कहां गये हैं? इस प्रकार इन्द्र के द्वारा बारम्बार पूछने पर भी हे राजन! उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया ॥७॥ तव वज्रधारी इन्द्र क्रुद्ध होकर उसे फटकारते हुए बोले कि मेरे बारम्बार पूछने पर भी तुम कुछ उत्तर नहीं देते हो ॥८॥ अतः हे दुष्ट! मैं तुमको वज्र से अभी मारता हूं। इस समय कौन तेरा रक्षक है? इस तरह कहकर इन्द्र ने उसे दृढ़ होकर वज्र से मारा ॥९॥ इन्द्र के मारते ही उसकी

तेजसा प्रदहन्निव ॥१०॥ दृष्ट्वा बृहस्पतिस्तूर्णं कृताञ्जलिपुटोऽभवत्। इन्द्रं च दण्डवद् भूमौ कृत्वा स्तोतुं प्रचक्रमे ॥११॥ बृहस्पतिरुवाच—नमो देवाधिपतये त्र्यम्बकाय कपर्दिने। त्रिपुरघ्नाय शर्वाय नमोऽन्धकनिषूदिने ॥१२॥ विरूपायातिरूपाय बहुरूपाय शम्भवे। यज्ञविध्वंसकर्त्रे च यज्ञानां फलदायिने ॥१३॥ कालान्तकाय कालाय कालभोगिधराय च। नमो ब्रह्मशिरोहन्त्रे ब्रह्मण्याय नमो नमः ॥१४॥ नारद उवाच—एवं स्तुतस्तदा शम्भुर्वर्धिषणेन जगाद तम्। संहरन्नयनज्वालां त्रिलोकीदहन-

काण्ड देखकर बृहस्पति ने शीघ्र हाथ जोड़कर तथा इन्द्र ने पृथ्वी पर दण्डवत् नम्रीभूत होकर स्तवन करना आरम्भ किया ॥११॥ बृहस्पति ने कहा—हे देवों के अधिपति! त्र्यम्बक, कपर्दी, त्रिपुरारी, शर्व और अन्धकार सुर का वध करने वाले शिवजी! आपको मेरा नमस्कार है ॥१२॥ अदृश्य रहने वाले अनेक आकृति धारण करने वाले शम्भु, यज्ञ विध्वंसक, यज्ञफल दाता, कालान्तक, काल, काले सर्प को धारण करने वाले, ब्रह्मा का शिरोच्छेदन करने वाले, ब्राह्मणों के हितकारी हे शिवजी! आपको नमस्कार है ॥१३–१४॥ नारदजी ने कहा, इस प्रकार बृहस्पति के स्तुति करने पर तीनों लोकों को भस्म करने में सशक्त शिवजी अपने नेत्र की दहकती हुई अग्नि को संभालते हुए

क्षमाम् ॥१५॥ वरं वरय भो ब्रह्मन् प्रीतः स्तुत्याऽनया तव। इन्द्रस्य जीवदानेन जीवेति त्वं प्रथां व्रज ॥१६॥

बृहस्पतिरुवाच—यदि तुष्टोऽसि देव त्वं पाहीन्द्रं शरणागतम्। अग्निरेष शमं यातु भालनेत्रसमुद्भवः ॥१७॥ ईश्वर उवाच—प्रवेशमायाति भालनेत्रे कथं शिखी। एवं त्यक्ष्याम्यहं दूरे यथेन्द्रं नैष पीडयेत् ॥१८॥ नारद उवाच—इत्युक्त्वा तं करे धृत्वा

बृस्पति से बोले ॥१५॥ हे देवगुरो! आपके स्तवन से मैं अति प्रसन्न हूं, अपनी इच्छानुसार वर मांगो और आज से इन्द्र को जीवन दान दिलाने के कारण तुम 'जीव' नाश से संसार में विख्यात होगे ॥१६॥

बृहस्पति ने कहा—हे देव! यदि आप प्रसन्न हैं तो इस शरणागत इन्द्र की रक्षा कीजिये और अपने नेत्र द्वारा उत्पन्न अग्नि को शान्त कीजिये ॥१७॥ शंकर ने कहा—नेत्र द्वारा अग्नि फिर भीतर कैसे जायेगी? इसको कहीं दूर फैंक दूंगा जिससे इन्द्र को कष्ट न देवे ॥१८॥ नारदजी ने कहा—ऐसा कहकर शंकरजी ने उस नेत्राग्नि को हाथ में लेकर खारे समुद्र में फैंक दिया और वह आग गंगा सागर के सङ्गम पर गिरी ॥१९॥ उक्त स्थान पर गिरते ही वह अग्नि बालक रूप में परिणत हो गई

प्राक्षिपत् लवणार्णवे। सोऽपि तत्सिन्धुगङ्गायाः सागरस्य च सङ्गमे ॥१९॥ तावत्स
बालरूपत्वमगात्तत्र रुरोद च। रुदतस्तस्य शब्देन प्राकम्पद्धरणी मुहुः ॥२०॥ स्वर्गाद्याः
सत्यलोकान्तास्तत्स्वनाद् बधिरीकृताः। श्रुत्वा ब्रह्मा ययौ तत्र किमेतदिति
विस्मितः ॥२१॥ तावत्समुद्रस्योत्सङ्गे तं बालं स ददर्श ह। ततो ब्रह्माऽब्रवीद्वाक्यं
कस्यायं शिशुरद्भुतः ॥२२॥ निशम्येति वचो धातुर्वाक्यं सिन्धुरथाब्रवीत्। दृष्ट्वा
ब्रह्माणमायान्तं समुद्रोऽपि कृताञ्जलिः ॥२३॥ प्रणम्य शिरसा बालं तस्योत्सङ्गे
न्यवेशयत्। भो ब्रह्मन् सिन्धुगङ्गायां जातोऽयं मम पुत्रकः ॥२४॥ जातकर्मादिसंस्कारान्

तथा वह बालक रोने लगा। उस बालक के रोदन से सम्पूर्ण पृथ्वी बारम्बार कांपने लगी ॥२०॥
देवलोक आदि से लेकर सत्यलोक तक सब लोकों के निवासी बधिर हो गये। इस शब्द को
सुनकर चकित होकर ब्रह्मा जी वहां गये कि यह क्या है? ॥२१॥ वहां जाकर ब्रह्मा ने समुद्र के तट
पर एक बालक देखा, तब ब्रह्माजी ने यह वाक्य कहा–यह अद्भुत बालक किसका है? ॥२२॥
ब्रह्मा को आया हुए देखकर तथा उनकी वाणी सुनकर समुद्र ने हाथ जोड़ कर नतमस्तक हो कर
प्रणाम कर उस बच्चे को ब्रह्माजी के अंक में रख दिया और कहने लगा कि हे ब्रह्मन्! यह लड़का

कुरुष्वास्य जगद्गुरोः। नारद उवाच–इत्थं वदति पाथोधौ स बालः सागरात्मजः ॥२५ ॥ ब्रह्माणमग्रहीत्कूर्चे विन्धुन्वंस्तं मुहुर्मुहुः। धुन्वतस्तस्य कूर्चे तु नेत्राभ्यामगमज्जलम् ॥२६ ॥ कथञ्चिन्मुक्तकूर्चोऽथ ब्रह्मा प्रोवाच सागरम्। ब्रह्मोवाच–नेत्राभ्यामुद्धृतं यस्मादनेनैतज्जलं मम ॥२७॥ तस्माज्जलन्धर इति ख्यातो नाम्ना भविष्यति। यत एव समुद्भूतस्तत्रैवान्तर्भविष्यति ॥२८ ॥

गङ्गा सागर के सङ्गम में उत्पन्न हुआ मेरा बालक है ॥२३–२४॥ हे जग के जन्मदाता! इस लड़के का जातकर्मादि संस्कार आप ही कीजिये। नारदजी ने कहा–समुद्र इस प्रकार कह ही रहा था कि समुद्र का बेटा ब्रह्माजी की दाढ़ी पकड़कर बारम्बार झकझोरने लगा। उस कारण ब्रह्माजी ने नेत्रों में आंसु भर आये ॥२५–२६॥ किसी प्रकार ब्रह्माजी ने अपनी दाढ़ी छुड़ाकर समुद्र से कहा कि इसने मेरे नेत्रों से आँसू बाहर निकाल दिये हैं ॥२७॥ अतएव इसका नाम जलन्धर होगा तथा जहां से इसकी उत्पत्ति हुई है वहीं से इसकी मृत्यु होगी ॥२८॥

नारदजी ने कहा–ब्रह्माजी ने ऐसा कह शुक्राचार्य को बुलाकर जालन्धर का राज्याभिषेक करा दिया और नदियों के स्वामी समुद्र को बुलाकर ब्रह्माजी अन्तर्ध्यान हो गये ॥२९॥ इसके पश्चात्

नारद उवाच–इत्युक्त्वा शुक्रमाहूय राज्ये तं चाभ्यषेचयत्। आमन्त्र्य सरितां नाथं ब्रह्मान्तर्धानमागतम्॥२९॥ अथ तद्दर्शनोत्फुल्लनयनः सागरस्तदा। कालनेमिसुतां वृन्दां तद्भार्यार्थमयाचत॥३०॥ ते कालनेमिप्रमुखास्ततोऽसुरास्तस्मै सुतां तां प्रददुः प्रहर्षिताः। स चापि तां प्राप्य सुहृद्वरां वशां शशास गां शुक्रसहायवान् बली॥३१॥

उस लड़के को राज्याभिषिक्त देखकर समुद्र के नेत्र हर्ष से उत्फुल्ल हो गए और समुद्र ने कालनेमि से उसकी पुत्री वृन्दा को जलन्धर की पत्नी होने के लिये मांगा॥३०॥ इस निवेदन पर कालनेमि आदि असुरों ने प्रसन्न होकर जलन्धर को अपनी कन्या दे दी, वह भी अत्यन्त प्रेमवती तथा आज्ञाकारी भार्या पाकर शुक्र की सहायता से निर्विघ्न शासन करने लगा॥३१॥

श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये जलन्धरोत्पत्ति वर्णनं नाम नवमोऽध्यायः समाप्तः॥९॥



दसवां अध्याय

नारद उवाच—ये देवैर्निर्जिताः पूर्वं दैत्याः पातालसंस्थिताः। तेऽपि भूमण्डलं याताः निर्भयास्तमुपाश्रिताः ॥१॥ कदाचिच्छिन्नशिरसं राहुं दृष्ट्वा स दैत्यराट्। पप्रच्छ भार्गवं तत्र तच्छिरश्छेदकारणम् ॥२॥ स शशंस समुद्रस्य मथनं देवकारितम्। रत्नापहरणं चैव दैत्यानां च पराभवम् ॥३॥ स श्रुत्वा क्रोधरक्ताक्षः स्वपितुर्मन्थनं तदा। दूतं संप्रेषयामास घस्मरं शक्रसन्निधौ ॥४॥ दूतस्त्रिविष्टपं गत्वा सुधर्मां

नारदजी ने कहा—जिन दैत्यों को पहले देवताओं ने पराजित कर दिया था और वे पाताल में रहते थे वे सब राजा जालन्धर का आश्रय पाकर पृथ्वी पर निर्भय होकर रहने लगे ॥१॥ किसी प्रकार राहु का कटा हुआ सिर देखकर जलन्धर ने गुरु शुक्राचार्य से उसके शिर के कटने का कारण पूछा ॥२॥ शुक्राचार्य ने देवताओं के द्वारा समुद्रमंथन, उससे उत्पन्न रत्नों को देवताओं द्वारा छीन लेना तथा दैत्यों के अनादर युक्त हार का वर्णन सुनाया ॥३॥ जलन्धर के अपने पिता का मंथन सुनकर उसकी आँखें क्रोध से लाल हो गईं और उसने घस्मर नामक अपना एक दूत इन्द्र के पास

प्राविशद्वराम्। जगाद खर्वमौलिस्तु देवेन्द्रं वाक्यमद्भुतम् ॥५॥ घस्मर उवाच–जलन्धरोऽब्धितनयः सर्वदैत्यजनेश्वरः। दूतोऽहं प्रेषितस्तेन स यदाह शृणुष्व तत् ॥६॥ कस्मात् त्वया मम पिता मथितः सागरोऽद्रिणा। नीतानि सर्वरत्नानि तानि शीघ्रं प्रयच्छ मे ॥७॥ इति दूतवचः श्रुत्वा विस्मितस्त्रिदशाधिपः। उवाच घस्मरं रौद्रं भयरोषसमन्वितः ॥८॥ इन्द्र उवाच–शृणु दूत मया पूर्वं मथितः सागरो यथा। अद्रयो मद्भयात् त्रस्ताः स्वकुक्षिस्थाः कृतास्तथा ॥९॥ अन्येऽपि मद्द्विषस्तेन रक्षिताः दितिजाः पुराः।

भेजा ॥४॥ घस्मर स्वर्ग में जाकर देवसभा में पहुंचकर अद्भुत वचन कहने लगा ॥५॥ घस्मर ने कहा–हे देवेन्द्र! समुद्र का पुत्र, सब राक्षसों का स्वामी जलन्धर का मैं दूत हूं और उन्होंने जो कहा है उसे सुनो ॥६॥ तुमने पर्वत से मेरे पिता समुद्र का मंथन क्यों किया? वहां से जो रत्न लाये हो उन सबको शीघ्र मुझे दे दो ॥७॥ इस प्रकार दूत की वाणी सुनकर महाराजा इन्द्र चकित हो गये। भय और क्रोधयुक्त हो घस्मर से बोले ॥८॥ इन्द्र ने कहा–हे दूत! प्राचीन काल में जिस लिये मैंने समुद्र का मंथन किया था, उसे सुनो। मुझसे भयभीत पर्वतों को समुद्र ने अपने उदर में छिपा लिया और प्राचीन काल में मेरे अन्य शत्रु दैत्यों की उसने रक्षा की थी। अतः मैंने उसका मंथन कर उसके सब

तस्माद्यत्तत्प्रजातं तु मयाप्यपहृतं किल ॥१०॥ शङ्खोऽप्येवं पुरा देवानद्विषत्सागरात्मजः। ममानुजेन निहतः प्रविष्टं सागरोदरम् ॥११॥ तद् गच्छ कथयस्वास्य सर्वं मथनकारणम्। नारद उवाच—इत्थं विसर्जितो दूतस्तदेन्द्रेणागमद् भुवम् ॥१२॥ तदिदं वचनं सर्वं दैत्यायाकथयत्तदा। तन्निशम्य तदा दैत्यो रोषात्प्रस्फुरिताधरः ॥१३॥ उद्योगमकरोत्तूर्णं सर्वदेवजिगीषया। तदोद्योगोऽसुरेन्द्रस्य दिग्भ्यः पातालतस्तथा ॥१४॥

रत्न ले लिये ॥९-१०॥ इसी प्रकार प्राचीन काल में समुद्र के पुत्र शंङ्खासुर ने भी देवताओं से द्वेष किया था—हमारे छोटे भाई विष्णु भगवान् ने सागर में घुसकर मारा था ॥११॥ अतः अपने स्वामी के पास जाओ और समुद्र के मंथन का सारा संवाद सुनाओ। समुद्र के मंथन का कारण अपने स्वामी जलन्धर से जाकर कह सुनाओ। नारदजी ने कहा—इस प्रकार वह दूत इन्द्र से विदा होकर पृथ्वी पर गया ॥१२॥ और इन्द्र का सम्पूर्ण कथन राजा जलन्धर से कहा—उन बातों को सुनकर क्रोध से उस दैत्य के होंठ कांपने लगे ॥१३॥ वह जलन्धर देवताओं को शीघ्र पराजित करने के उद्योग में लग गया और उस के उद्योग के कारण प्रत्येक दिशाओं तथा पाताल से ॥१४॥ करोड़ों राक्षस इकट्ठा होने लगे। अपने करोड़ों की सेना साथ लेकर शुम्भ निशुम्भादिक दैत्यपति वहां आ

दितिजाः प्रत्यपद्यत कोटिशः कोटिशस्तदा। अथ शुम्भनिशुम्भाद्यैर्दलाधिपतिकोटिभिः ॥१५॥ गत्वा त्रिविष्टपं दैत्यो नन्दनाधिष्ठितोऽभवत्। निर्ययुस्त्वमरावत्या देवा युद्धाय दंशिताः ॥१६॥ पुरीमावृत्य तिष्ठन्ति दृष्ट्वा दैत्यबलं महत्। ततः समभवद्युद्धं देवदानवसेनयोः ॥१७॥ मुसलैः परिघैर्बाणैर्गदाशक्तिपरश्वधैः। ततोऽन्ये समधावन्त जघ्नतुश्च परस्परम् ॥१८॥ क्षीणे चोभयसैन्ये तु रुधिरौघप्रवर्तिनी। पतितैः पात्यमानैश्च गजाश्वरथपत्तिभिः ॥१९॥ विरराज रणे भूमिः सन्ध्याभ्रपटलैरिव। तत्र युद्धे मृतान्

पहुंचे ॥१५॥ उस राक्षसराज जलन्धर ने स्वर्गलोक में जाकर नन्दनवन पर अपना अधिकार कर लिया। तब देवतागण भी युद्ध करने के लिये स्वर्ग से बाहर निकले ॥१६॥ देवताओं ने देखा कि प्रबल दैत्यों की सेना ने अमरावती पुरी को घेर लिया है अतः देवता और दैत्यों की सेना में घमासान युद्ध होने लगा ॥१७॥ मुसल, परिघ, बाण, गदा, शक्ति और फरसा से देवता-दानवों ने एक-दूसरे पर दौड़-दौड़ कर आक्रमण कर दिया ॥१८॥ लड़ते-लड़ते दोनों सेनाएं क्षीण हो गयीं। रक्त की धारा बहने लगी। चोट खाकर गिरे हुए तथा घायल होकर गिरने वाले रक्त से सने हुए हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदलों में वह संग्राम भूमि सन्ध्याकाल के मेघों के समान लाल हो गयी। उस युद्ध में मरे

दैत्यान् भार्गवस्तूदतिष्ठिपत् ॥२०॥ विद्ययाऽमृतजीविन्या मन्त्रितैस्तोयबिन्दुभिः। देवानपि हतान् युद्धे पुनरेव समुत्थितान् ॥२१॥ जलन्धरः क्रोधवशो भार्गवं वाक्यमब्रवीत्। जलन्धर उवाच–मया युद्धे हता देवा उत्तिष्ठन्ति कथं पुनः ॥२२॥ तव सञ्जीवनी विद्या नैवान्यत्रेति विश्रुतम्। शुक्र उवाच–दिव्यौषधीः समानीय द्रोणाद्रेरङ्गिराः सुरान् ॥२३॥ जीवयत्येष तच्छीघ्रं द्रोणाद्रिं त्वमपाहर। नारद उवाच– इत्युक्तः स तु दैत्येन्द्रो नीत्वा द्रोणाचलं तदा ॥२४॥ प्राक्षिपत्सागरे तूर्णं पुनरागान्महा–

हुए राक्षसों को शुक्रजी जिलाने लगे। मृतसञ्जीवनी विद्या से अभिमन्त्रित किये हुए जल की बूंदों के द्वारा युद्ध में मरे हुये दैत्यों को शुक्राचार्य जी जिलाने लगे ॥१९– ॥२०॥ दूसरी ओर मरे हुये देवता भी जीकर उठने लगे। मरे हुये देवताओं को पुनः जीवित देखकर क्रोधित होकर जलन्धर ने शुक्राचार्य से कहा। जहन्धर ने कहा–अभी मैंने जिन देवताओं को संग्राम में मारा है वे फिर क्यों जीवित हो गये? ॥२१–२२॥ यह सुना गया है कि आपकी मृतसञ्जीवनी विद्या आपके अतिरिक्त किसी और को ज्ञात नहीं है। शुक्राचार्य ने कहा–देवताओं के आचार्य्य बृहस्पति द्रोणाचल से दिव्यौषधियों को लाकर देवताओं को जिलाते हैं ॥२३॥ अतः तुम द्रोणाचल को हर लो। नारदजी

हवम्। अथ देवान् हतान् दृष्ट्वा द्रोणाद्रिमगमद् गुरुः ॥२५॥ तावत्तत्र गिरीन्द्रस्तु न ददर्श सुरार्चितः। ज्ञात्वा दैत्यहृतं द्रोणं धिषणो भयविह्वलः ॥२६॥ आगत्य दूराद् व्याजह्रे श्वासाकुलितविग्रहः। पलायध्वं महादेवा नायं जेतुं क्षमा यतः ॥२७॥ रुद्रांश-सम्भवो ह्येष स्मरध्वं शक्र चेष्टितम्। श्रुत्वा तद्वचनं देवाः भयविह्वलितास्तदा ॥२८॥

ने कहा–उनके ऐसा कहने पर जलन्धर ने द्रोणाचल को लाकर ॥२४॥ समुद्र में फैंक दिया और स्वयं फिर देवताओं के साथ महायुद्ध में संलग्न हो गया। तदनन्तर देवताओं को मृतक देखकर बृहस्पति जी द्रोणाचल पर गये ॥२५॥ किन्तु वहां पर द्रोणाचल को उन्होंने नहीं देखा। दैत्य जलन्धर द्वारा द्रोणाचल हटा हुआ जानकर बृहस्पति चिन्ता-भय से किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये ॥२६॥ उष्णोच्छ्वास लेते हुए बृहस्पति ने आकर दूर से ही कहा–हे देवगण! आप लोग जल्दी भागें क्योंकि आप लोग इसे जीतने में समर्थ नहीं है ॥२७॥ यह राक्षस श्री शंकरजी के अंश से उत्पन्न हुआ है। तुम लोग इन्द्र की चेष्टा को स्मरण करो। इस प्रकार बृहस्पति की वाणी सुनकर भय से व्याकुल होते हुए ॥२८॥ जलन्धर राक्षस द्वारा मरते हुए सब देवता दशों दिशाओं में भागने लगे। देवताओं को भागता हुआ देखकर समुद्र पुत्र जलन्धर ॥२९॥ तब शङ्ख भेरी तथा जय शब्द करता हुआ अमरावती

दैत्येन वध्यमानास्ते पलायन्त दिशो दश। देवान् विद्रावितान् दृष्ट्वा दैत्यः सागर-नन्दनः ॥२९॥ शंखभेरीजयरवः प्रविवेशामरावतीम्। प्रविष्टे नगरीं दैत्ये देवाः शक्र-पुरोगमाः ॥३०॥ सुवर्णाद्रिगुहां प्राप्ता न्यवसन् दैत्यतापिताः ॥३१॥ ततश्च सर्वेष्व-सुरोऽधिकारेष्विन्द्रादिकानां विनिवेशयत्तदा। शुम्भादिकान् दैत्यवरान्पृथक् पृथक् स्वयं सुवर्णाद्रिगुहामगात्पुनः ॥३२॥

नगरी में पहुंचा। राक्षसों को इन्द्रपुरी में अधिष्ठित देखकर॥ ३०॥ राक्षसों से सताये हुए देवता कैलाश पर्वत की गुफा में जाकर रहने लगे ॥३१॥ इसके पश्चात् जलन्धर ने इन्द्र आदि के समस्त अधिकारों पर शुंभ आदि राक्षसों को अलग–अलग अधिष्ठित कर स्वयं कैलाश पर्वत की गुफाओं में गया ॥३२॥

श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये जलन्धरोपाख्याने जलन्धर विजय प्राप्तिनाम दशमोऽध्यायः समाप्तः ॥१०॥



ग्यारहवां अध्याय

नारद उवाच—पुनर्दैत्यं समायान्तं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः। भयप्रकम्पिताः सर्वे विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमुः ॥१॥ देवा ऊचुः—नमो मत्स्यकूर्मादिनानास्वरूपैः सदा भक्त-कार्योद्यतायार्तिहन्त्रे। विधात्रादिसर्गस्थितिध्वंसकर्त्रे गदाशङ्खपद्मासिहस्ताय तेऽस्तु ॥२॥ रमावल्लभायासुराणां निहन्त्रे भुजङ्गारियानाय पीताम्बराय। मखादिक्रियापाककर्त्रे

नारदजी ने कहा—जलन्धर राक्षस को फिर आता हुआ देखकर सभी इन्द्रादि देवतागण भय से कांपने लगे। विष्णु भगवान् की स्तुति करने लगे ॥१॥ देववृन्द बोले—हे भगवन्! आप मत्स्य कूर्मादि कितने ही अवतार धारण करके अपने भक्तों के कार्य करने के लिये उद्यत रहते आये हैं और सर्वदा दुखियों के दुःखों का नाश करते आये हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप धारण कर संसार की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करते आये हैं, गदा, शङ्ख, पद्म और चक्र अपने हाथों में धारण किये हैं, ऐसे हे भगवन् आपको नमस्कार है ॥२॥ आप श्री लक्ष्मी के पति, दैत्यों का विनाश करने वाले, गरुड़ पर सवारी करने वाले और विघ्नों को दूर करने वाले भगवान् विष्णु आपको

विकर्त्रे शरण्याय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः ॥३ ॥ नमो दैत्यसन्तापितामर्त्यदुःखा-चलध्वंसदम्भोलये विष्णवे ते। नमो वै भुजङ्गेशयायार्कचन्द्र द्विनेत्राय तस्मै नताः स्मो नताःस्मः ॥४ ॥ नारद उवाच—संकष्टनाशनं नाम स्तोत्रमेतत्पठेन्नरः। स कदाचिन्न संकष्टैः पीड्यते कृपया हरेः ॥५ ॥ इति देवाः स्तुतिं यावत् कुर्वन्ति दनुजद्विषः। तावत्सुराणामापत्तिर्विज्ञाता विष्णुना तदा ॥६ ॥ सहसोत्थाय दैत्यारिः सक्रोधः खिन्नमानसः। आरूढो गरुडं वेगाल्लक्ष्मीं वचनमब्रवीत् ॥७ ॥ श्रीभगवानुवाच—

बारम्बार प्रणाम करते हैं ॥३ ॥ हे विष्णु ! आप राक्षसों से पीड़ित देवताओं के दुःखरूपी पर्वत के लिये वज्र के सदृश हैं, आप शेषरूपी शय्या पर शयन करते हैं, सूर्य तथा चन्द्रमा ये दोनों आपके नेत्र हैं इस प्रकार स्वरूपधारी आपको हमारा बारम्बार प्रणाम है ॥४ ॥ नारदजी ने कहा—जो प्राणी इस सङ्कट को नाश करने वाले स्तोत्र का पाठ करेगा वह विष्णु भगवान् की कृपा से कभी भी दुःखी न होगा ॥५ ॥ देवतागण इस प्रकार विष्णु भगवान् की स्तुति करने लगे। तब विष्णु भगवान् को देवताओं की विपत्ति का ज्ञान हुआ ॥६ ॥ विष्णु भगवान् तुरन्त शय्या से उठकर खड़े हुये। क्रोध और उदास होते हुए गरुड़ पर सवार होकर लक्ष्मी से कहने लगे ॥७ ॥ श्री भगवान ने कहा—तुम्हारे

जलन्धरेण ते भ्राता देवानां कदनं कृतम्। सुराहूतो गमिष्यामि युद्धायाद्य त्वरान्वितः ॥८॥ श्रीरुवाच—अहं ते वल्लभा नाथ भक्ता च यदि सर्वदा। तत्कथं ते मम भ्राता युद्धे वध्यः कृपानिधे ॥९॥ रुद्रांशसम्भवत्वाच्च ब्रह्मणो वचनादपि। प्रीत्यो च तेन नैवायं मम वध्यो जलन्धरः ॥१०॥ नारद उवाच—इत्युक्त्वा गरुडारूढः शंखचक्रगदासिभृत्। विष्णुर्वेगाद्ययौ योद्धं यत्र देवाः स्तुवन्ति ते ॥११॥ अथारुणा-

भाई जलन्धर ने देवताओं को बहुत कष्ट दिया है। देवताओं ने मुझे युद्ध के लिये बुलाया है। अतः शीघ्रतापूर्वक मैं वहाँ जाऊंगा ॥८॥ लक्ष्मी जी ने कहा—हे नाथ! हे कृपानिधि! मैं आपकी प्यारी पत्नी हूं। यदि मैं सर्वदा आप में भक्ति रखती हूं, तब आप मेरे भाई को युद्ध में कैसे मार सकेंगे ॥९॥ भगवान् ने कहा—कि शिवजी के अंश से उत्पन्न होने के कारण, ब्रह्मा के वरदान के कारण तथा तुम्हारी प्रीतिवश जलन्धर मेरे मध्य योग्य नहीं है ॥१०॥ नारदजी ने कहा—कि विष्णु भगवान् लक्ष्मी जी से ऐसा कहकर गरुड़ पर आसीन हुए। शङ्ख, चक्र, गदा और तलवार धारण किये हुए दैत्यों से युद्ध करने के लिये विष्णु भगवान् शीघ्रता से जहां देवतागण स्तुति करते थे जा पहुंचे ॥११॥ तदनन्तर गरुड़ के पंखों द्वारा प्रताड़ित हो कर वेग से आहत होकर मेघ आकाश में

नुजात्युग्रपक्षवातप्रपीडिताः। वात्याविमर्दिता दैत्याः बभ्रमुः खे यथो घनाः ॥१२॥ ततो जलन्धरो दृष्ट्वा दैत्यान्वात्याप्रपीडितान्। उद्धृत्य नयनं क्रोधात्ततो विष्णुं समभ्यगात् ॥१३॥ ततः समभवद्युद्धं विष्णुदैत्येन्द्रयोर्महत्। आकाशं कुर्वतो बाणैस्तदा निरवकाशवत् ॥१४॥ विष्णुर्दैत्यस्य बाणौघैर्ध्वजं छत्रं धनुर्हयान्। चिच्छेद तं च हृदये बाणेनैकेन ताडयन् ॥१५॥ ततो दैत्यः समुत्पत्य गदापाणिस्त्वरान्वितः। आहत्य गरुडं मूर्ध्नि पातयामास भूतले ॥१६॥ विष्णुर्गदां स्वखड्गेन चिच्छेद प्रहसन्निव। तावत्स

उड़ते हैं ॥१२॥ दैत्याधीश जलन्धर राक्षसों को वायु से पीड़ित देखकर क्रोधित होता हुआ उछलकर विष्णु भगवान् के समीप गया ॥१३॥ विष्णु तथा जलन्धर में घोर युद्ध हुआ। बाणवर्षा से आकाशमण्डल ढँक गया ॥१४॥ तब विष्णु भगवान् ने अपने बाणों से जलन्धर की पताका, छत्र, धनुष तथा घोड़ों को काट दिया और जलन्धर की छाती में एक बाण मारा ॥१५॥ बाण से घायल जलन्धर क्रुद्ध होकर गदा को हाथ में लेकर उछाला और गरुड़ के मस्तक में प्रहार कर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया ॥१६॥ विष्णु भगवान् ने मन्दहास करते हुए अपनी तलवार से उसकी गदा काट दी, इस बीच में जलन्धर ने विष्णु की छाती में एक दृढ़ घूंसा मारा ॥१७॥ पश्चात् महाबलशाली दोनों वीर अपने

हृदये विष्णु जघान दृढमुष्टिना ॥१७॥ ततस्तौ बाहुयुद्धेन युयुधाते महाबलौ।
बाहुभिर्मुष्टिभिचैव तुदन्तौ जानुभिर्महीम् ॥१८॥ एवं तौ रुचिरं युद्धं कृत्वा विष्णुः
प्रतापवान्। उवाच दैत्यराजानं मेघगम्भीरनिस्वनः ॥१९॥ विष्णुरुवाच–वरं वरय
दैत्येन्द्र प्रीतोऽस्मि तब विक्रमात्। अदेयमपि ते दद्मि यत्ते मनसि वर्तते ॥२०॥

जलन्धर उवाच–यदि भावुक तुष्टोऽसि वरमेनं ददस्व मे मद्भगिन्या सहाद्य त्वं
मद्गृहे सगणो वस ॥२१॥ नारद उवाच–तथेत्युक्त्वा स भगवान् सर्वदेवगणैः सह।

प्रहार से पृथ्वी को निनादित करते हुए बाहुयुद्ध, मुष्टिप्रहार और जंघों द्वारा मल्लयुद्ध करने लगे ॥१८॥ इस प्रकार दोनों ने सुन्दर मल्लयुद्ध किया। तब प्रतापी विष्णु भगवान् ने कहा–हे दैत्यराज! तुम्हारे पराक्रम से मैं अतिशय प्रसन्न हूं। तुम अभीष्ट वर मांगो, जो देने के योग्य न भी होगा सो भी मैं तुम्हें दूंगा ॥१९-२०॥

जलन्धर ने कहा–हे भावुक! यदि आप मेरे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हैं तो मुझे यह वरदान दीजिये कि आज मेरी बहिन और अपने समस्त गणों के साथ आप मेरे घर में निवास कीजिये ॥२१॥ नारद जी ने कहा–विष्णु भगवान् ने 'ऐसा ही होगा' कहकर समस्त देवताओं और लक्ष्मी के साथ

तदा जलन्धरपुरमगमद्रमया सह ॥२२॥ जलन्धरस्तु देवानामधिकारेषु दानवान्। स्थापयित्वा महाबाहुः पुनरागान् महीतलम् ॥२३॥ देवगन्धर्वसिद्धेषु यत्किञ्चिद्रत्न-संयुतम्। तदात्मवशगं कृत्वाऽतिष्ठत्सागरनन्दनः ॥२४॥ पातालभुवने दैत्यं निशुम्भं स महाबलम्। स्थापयित्वा स शेषादीनानयद् भूतलं बली ॥२५॥ देवगन्धर्वसिद्धाद्यान् सर्पराक्षसमानुषान्। स्वपुरे नागरान् कृत्वा शशास भुवनत्रयम् ॥२६॥ एवं जलन्धरः कृत्वा देवान् स्ववशवर्तिनः। धर्मेण पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥२७॥ न

जलन्धर की पुरी में गये ॥२२॥ जलन्धर देवताओं के स्थान पर दानवों को बैठाकर फिर पृथ्वी पर लौट आया ॥२३॥ देवता, गन्धर्व और सिद्धों के पास जो श्रेष्ठ रत्न थे उन सब को अपने वश में करके सागर पुत्र जलन्धर सानन्दपूर्वक निवास करने लगा ॥२४॥ पाताल लोक में महापराक्रमशाली निशुंभ को बैठाकर शेषनागादि को भी पृथ्वी पर ले आया ॥२५॥ देव, गन्धर्व, सिद्ध, सर्प और राक्षस तथा मनुष्यों को अपनी प्रजा तथा अपने नागरिक बनाकर त्रैलोक्य पर शासन करने लगा ॥२६॥ जलन्धर देवताओं को अपने अधीन कर पुत्रों की तरह प्रजा का धर्म से पालन करने लगा ॥२७॥ जलन्धर के शासन काल में उसके राज्य का कोई भी प्राणी रोगी, दुखी, निर्बल तथा दीन नहीं

कश्चिद् व्याधितो नैव दुःखो नैव कृशस्तथा। न दीनो दृश्यते तस्मिन् धर्माद्राज्यं प्रशासति ॥२८॥ एवं महीं शासति दानवेन्द्रे धर्मेण सम्यक् च दिदृक्षयाहम्। कदाचिदागामथ तस्य लक्ष्मीं विलोकयितुं श्रीरमणं च सेवितुम् ॥२९॥

दिखाई देता था। वह धर्मपूर्वक शासन करता था ॥२८॥ नारदजी ने कहा–इस प्रकार जब वह नियम और धर्मपूर्वक पृथ्वी पर शासन कर रहा था उसी समय मैं भी एक बार लक्ष्मी द्वारा सेवित विष्णु भगवान् के दर्शन की अभिलाषा से वहाँ पर गया ॥२९॥

श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये नारदागमनं नाम एकादशोऽध्यायः समाप्तः ॥११॥



बारहवां अध्याय

नारद उवाच—स मां प्रोवाच विधिवत् सम्पूज्य च भक्तिमान्। संप्रहस्य तदा वाक्यं स्नेहपूर्वं च वै नृप ॥१ ॥ कुत आगम्यते ब्रह्मन् किं च दृष्टं त्वया प्रभो। यदर्थमिह चायातस्तदाज्ञापयतां मुने ॥२ ॥ नारद उवाच—गतः कैलासशिखरं दैत्येन्द्राहं यदृच्छया। तत्रोमया समासीनं दृष्टवानस्मि शङ्करम् ॥३ ॥ योजनायुतविस्तीर्णे कृल्पवृक्षमहावने। कामधेनुशताकीर्णे चिन्तामणि-प्रदीपिते ॥४ ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं विस्मयो

नारदजी ने कहा—हे राजन्! उस भक्तिमान् त्रैलोक्य के स्वामी दैत्येन्द्र जलन्धर ने विधिवत् हमारी पूजा की और हँसकर हाथ जोड़कर स्नेहपूर्वक वह बोला ॥१ ॥ हे देवर्षि! आप इस समय कहां से आ रहे हैं? आपने कहां क्या देखा? जिस उद्देश्य से आप यहां आये हैं उसकी आज्ञा कीजिये ॥२ ॥ नारदजी ने कहा—हे दैत्यराज! मैं यों ही घूमता हुआ कैलाश पर्वत पर जा पहुंचा। वहां पार्वती जी के साथ बैठे हुए शिवजी को देखा ॥३ ॥ वहां दश हज़ार योजन के विस्तार में कल्पवृक्षों का भारी जङ्गल था। वह महावन सैंकड़ों कामधेनु गौओं से युक्त था। जिसमें कैलाश पर्वत चिन्तामणि के समान देदीप्यामान हो रहा था ॥४ ॥ यह दृश्य देखकर मुझे तो बड़ा आश्चर्य और

मेऽभवत्तदा। क्वापीदृशी भवेदृद्धिस्त्रैलोक्ये वा न वेति च ।।५ ।। तदा तवापि दैत्येन्द्र समृद्धिः संस्मृता मया। तद्विलोकनकामोऽस्मि त्वत्सान्निध्यमिहागतः ।।६ ।। त्वत्समृद्धिमिमां पश्यन् स्त्रीरत्नरहितां ध्रुवम्। तर्कयामि शिवादन्यस्त्रैलोक्ये न समृद्धिमान् ।।७ ।। अप्सरोनागकन्याद्याः यद्यपि त्वद्वशे स्थिताः। तथापि ताः न पार्वत्या रूपेण सदृशा ध्रुवम् ।।८ ।। यस्या लावण्यजलधौ निमग्नश्चतुराननः। स्ववीर्यममुचत् पूर्व तया कान्योपमीयते ।।९ ।। वीतरागोऽपि हि तथा मदनारिः स्वलीलया। सौन्दर्य-

विस्मय हुआ औत चित्त में यह संकल्प-विकल्प होने लगा कि ऐसी सम्पत्ति तीनों लोकों में और कहीं है या नहीं ।।५ ।। हे दैत्यराज! उसी समय तुम्हारी सम्पत्ति का स्मरण मुझे हो गया। उसी को देखने के लिये मैं आपके समीप आज यहां पर आया हूं ।।६ ।। स्त्री के बिना तुम्हारी यह सम्पत्ति देखकर भी मैं इसी निष्कर्ष पर हूं कि महादेवजी के अतिरिक्त कोई दूसरा त्रैलोक्य में समृद्धिशाली नहीं है ।।७ ।। यद्यपि तुम्हारे वश में अनेक अप्सरा तथा नागकन्यायें हैं किन्तु उनमें कोई भी पार्वती की भांति रूपवती नहीं है ।।८ ।। प्राचीन काल में जब पार्वती के सैन्दर्यरूपी समुद्र में डूबकर ब्रह्मा जी का भी वीर्यपात हो गया था तब भला उसके सौन्दर्य की उपमा किससे की जा सकेगी ।।९ ।।

गहनेऽभ्राम्यत् शफरीरूपया पुरा ॥१०॥ यस्याः पुनः पुनः रूपं पश्यन् धाता विसर्जने। ससर्जाप्सरसस्तासां तत्समैकापि नाभवत् ॥११॥ अतः स्त्रीरत्नसम्भोक्तुः समृद्धिस्तस्य सा वरा। तथा न तव दैत्येन्द्र सर्वरत्नाधिपस्य च ॥१२॥ एवमुक्त्वा समोमन्त्र्य गते सति स दैत्यराट्। तद्रूपश्रवणादासीदनङ्गज्वरपीडितः ॥१३॥ अथ संप्रेषयामास स दूतं सिंहिकासुतम्। त्र्यम्बकायापि च तदा विष्णुमायाविमोहितः ॥१४॥

जिस मत्स्यरूपिणी पार्वती ने विरागी और कामदेव के शत्रु होने पर भी शिवजी को सरलतापूर्वक अपनी सुन्दरता रूपी विकराल कीचड़ में फँसाकर शिवजी को नाच नचाया था ॥१०॥ स्त्रियों की सृष्टि करते हुए विधाता ने जिसे रूपलावण्य का बार-बार निरीक्षण करके अप्सराओं की रचना की थी। फिर भी उनके समान एक भी अप्सरा न बन सकी ॥११॥ अतः स्त्रीरूपी रत्न भोग करने वाले शिवजी की वह समृद्धि सर्वश्रेष्ठ है। हे दैत्यराज! सब रत्नों के स्वामी होने पर भी तुम्हारे पास वह समृद्धि नहीं है ॥१२॥ ऐसा कह कर तथा उससे परामर्श करके मेरे लौट आने के बाद वह पार्वती के रूप का वर्णन सुनकर कामज्वर से पीड़ित हो गया ॥१३॥ तदनन्तर विष्णु भगवान् की माया से मोहित होकर जलन्धर ने राहु को अपना दूत बनाकर महादेवजी के पास भेजा ॥१४॥

कैलासमगमद्राहुः कुर्वन् शुक्लेन्दुवर्चसम्। कार्ष्ण्येन कृष्णपक्षेन्दुवर्चसं स्वाङ्गजेन तम् ॥१५॥ निवेदितस्तदेशाय नन्दिता प्रविवेश सः। त्र्यम्बकभ्रूलतासंज्ञाप्रेरितो वाक्यमब्रवीत् ॥१६॥ राहुरुवाच—देवपन्नगसेव्यस्य त्रैलोक्याधिपतेः प्रभो। सर्वरत्नेश्वरस्य त्वमाज्ञां शृणु वृषध्वज ॥१७॥ श्मशानवासिने नित्यमस्थिभारवहस्य च। दिगम्बरस्ते भार्या कथं हैमवती शुभा ॥१८॥ अहं रत्नाधिनाथोऽस्मि सा च स्त्रीरत्नसंज्ञिका। तस्मान्ममैव सा योग्या नैव भिक्षाशिनस्तव ॥१९॥ नारद उवाच—वदत्येवं

शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह शोभायमान कैलाश को राहु अपनी शरीर की कालिमा से कृष्णपक्ष की भांति उज्ज्वल करता हुआ कैलाश पर गया और द्वारपाल—नन्दीश्वर की आज्ञानुसार महादेवजी के पास जा उनकी भ्रकुटि का संकेत पाकर राहु बोला ॥१५-१६॥ राहु ने कहा—हे वृषध्वज! देवता और सर्पों के पूज्य तथा सकल रत्नों के स्वामी, त्रैलोक्य के नाथ श्री महाराज जलन्धर की आज्ञा सुनो ॥१७॥ भयानक श्ममान में निवास करने वाला, हड्डियों के भार को धारण करने वाला, हमेशा नङ्गा रहने वाला प्राणी, पार्वती जैसी रूपवती को अपनी स्त्री कैसे बनावेगा? ॥१८॥ मैं सब रत्नों का स्वामी हूं, पार्वती भी स्त्रियों में एक रत्न है, अतः वह मेरे स्त्री होने योग्य है, वह

तदा राहौ भ्रूमध्याच्छूलपाणिनः। अभवत्पुरुषो रौद्रस्तीव्राशनिसमस्वनः ॥२० ॥ सिंहास्यः प्रचलज्जिह्वः सज्वालनयनो महान्। ऊर्ध्व केशः शुष्कतनुर्नृसिंह इव चापरः ॥२१ ॥ अधावत स वेगेन बहिः स च दधार तम्। दृष्ट्वा खादितुमारब्धस्ता-वद्रुद्रेण वारितः ॥२२ ॥ नैवासौ वध्यतामेति दूतोऽयं परवान् यतः। मुञ्चेति पुरुषः श्रुत्वा राहुं तत्याज सोऽम्बरे ॥२३ ॥ राहुं त्यक्त्वाथ पुरुषस्तदा रुद्रं व्यजिज्ञिपत्। पुरुष

तुम्हारे जैसे भिक्षुक के योग्य नहीं हो सकती ॥१९ ॥ नारदजी ने कहा–राहु इस तरह कह ही रहा था कि इतने में शंकरजी के भ्रू से वज्र के समान गरजता हुआ एक भयंकर पुरुष उत्पन्न हुआ ॥२० ॥ जिसका सिंह के समान बार–बार मुख लपलपा रहा था। जिसके नेत्रों से भयानक अग्निज्वाला निकल रही थी और केश खड़े हो रहे थे। अत्यन्त दुर्बल शरीर था वह। दूसरे नरसिंह के समान प्रतीत हो रहा था ॥२१ ॥ अपने को खा जाने के लिये उस पुरुष को अपनी ओर आता हुआ देखकर राहु बड़े वेग से भागा परन्तु उसने बाहर आकर राहु को पकड़ ही लिया। वह पुरुष जब राहु को पकड़कर खाने के लिये उद्यत हुआ तब उसे महादेवजी ने रोक दिया ॥२२ ॥ और कहा कि यह पराधीन दूत है इसे न मारो, छोड़ दो, ऐसी बातें सुनकर उसने राहु को आकाश में ही छोड़

उवाच—क्षुधा मां बाधतेऽत्यन्तं क्षुत्क्षामश्चास्मि सर्वथा ॥२४॥ किं भक्षयामि देवेश तदाज्ञापय मां प्रभो। ईश्वर उवाच—भक्षयस्वात्मनः शीघ्रं मांसं त्वं हस्त-पादयोः ॥२५॥ नारद उवाच—स शिवेनैवमाज्ञप्तश्चखाद पुरुषः स्वकम्। हस्त-पादोद्भवं मांसं शिरःशेषो यथाभवत् ॥२६॥ दृष्ट्वा शिरोऽवशेषं तं सुप्रसन्नस्तदा शिवः। उवाच भीमकर्माणं पुरुषं जातविस्मयः ॥२७॥ ईश्वर उवाच—त्वं कीर्तिमुख-

दिया ॥२३॥ राहु के छोड़ने के बाद वह पुरुष महादेवजी से प्रार्थना करने लगा। उक्त पुरुष ने कहा—कि हे देवेश! हे प्रभो! मैं अतिशय भूखा-प्यासा हूं। मुझे भूख अत्यन्त कष्ट दे रही है ॥२४॥ आप आज्ञा दें मैं क्या खाऊँ? शिवजी ने कहा—शीघ्र ही अपने हाथ-पैर का मांस खाओ ॥२५॥ नारदजी ने कहा—शिवकी आज्ञा पाकर वह अपने हाथ-पैर का मांस इस प्रकार खा गया कि उसका केवल शिर ही बच पाया ॥२६॥ उसका अवशेष शिर देखकर विस्मित और प्रसन्न होकर उस भयंकर कार्य करने वाले से शिवजी ने कहा ॥२७॥ शंकर ने कहा—तुम्हारा नाम आज से कीर्तिमुख हुआ। मेरे द्वार पर सर्वदा रहो, जो मेरे भक्त तेरी पूजा नहीं करेंगे वे मेरे प्रिय नहीं होंगे ॥२८॥ नारदजी ने कहा—उसी दिन से महादेव जी के द्वार पर कीर्तिमुख रहने लगा। तभी से जो कोई

संज्ञो हि भव मदद्वारगः सदा। त्वदर्चां ये न कुर्वन्ति नैव ते मत्प्रियङ्कराः ॥२८ ॥ नारद उवाच–तदाप्रभृति देवस्य द्वारि कीर्तिमुखः स्थितः। नार्चयन्तीह ये पूर्वं तेषामर्चा वृथा भवेत् ॥२९ ॥ राहुर्विमुक्तो यस्तेन सोऽपि तद् बर्बरस्थले। अतः स बर्बरो भूत इति भूमौ प्रथां गतः ॥३० ॥ ततः स राहुः पुनरेव जातमात्मानमस्मिन्निति मन्यमानः। समेत्य सर्वं कथयांबभूव जलन्धरायैव विचेष्टितं ततः ॥३१ ॥

शिवजी की पूजा के पहले कीर्तिमुख की पूजा नहीं करता उसकी पूजा व्यर्थ हो जाती है ॥२९ ॥ उस राहु को कीर्तिमुख ने बर्बर नामक स्थान में छोड़ा था, इसी से उस स्थान का नाम भी बर्बर पड़ा ॥३० ॥ कीर्तिमुख के छोड़ने के पश्चात् राहु ने अपना पुनर्जन्म मानते हुए जलन्धर के पास आकर अपनी सारी कथा सुनाई ॥३१ ॥

श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये जलन्धरोपाख्याने दूतवाक्य कथनंनाम द्वादशोऽध्यायः समाप्तः ॥१२ ॥

✪ ✪ ✪

तेरहवां अध्याय

नारद उवाच—जलन्धरस्तु तच्छ्रुत्वा कोपाकुलितविग्रहः। निर्जगामाशु दैत्यानां कोटिभिः परिवारितः ॥१॥ गच्छतोऽस्याग्रतः शुक्रो राहुर्दृष्टिपथेऽभवत्। मुकुटश्चापतद् भूमौ वेगात्प्रस्खलितस्तथा ॥२॥ दैत्यसैन्यावृतैस्तस्य विमानानां शतैस्तदा। व्यराजत नभः पूर्णं प्रावृषीव यथा घनैः ॥३॥ तस्योद्योगं तदा दृष्ट्वा देवाः शक्रपुरोगमाः। अलक्षितास्तदा जग्मुः शूलिनं तं व्यजिज्ञपुः ॥४॥ देवा ऊचुः—न जानासि

नारदजी ने कहा कि जलन्धर ऐसा सन्देश सुनकर अतिशय क्रोधित हुआ। करोड़ों दैत्यों के परिवार के साथ शीघ्र ही निकल आया ॥१॥ जाते समय उनको अपने सन्मुख शुक्र तथा राहु दृष्टिगोचर हुए, उन्हें देखते ही उसका मुकुट पृथ्वी पर गिर पड़ा और शीघ्रता से स्वयं भी फिसल गया ॥२॥ सैंकड़ों दैत्यों की सेनाओं से तथा सहस्त्र विमानों से व्याप्त आकाश, वर्षा काल में बादलों की भांति हो गया ॥३॥ उसके इस प्रयास को देखकर इन्द्रादि देवता भागकर चुपके से महादेवजी के पास जाकर बोले ॥४॥ देवताओं ने कहा—हे स्वामिन्! क्या आप हम लोगों की

कथं स्वामिन् देवापत्तिमिमां विभो। तदस्मद्रक्षणार्थाय जहि सागरनन्दनम् ॥५ ॥ नारद उवाच–इति देववचः श्रुत्वा प्रहस्य वृषभध्वजः। महाविष्णुं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥६ ॥ ईश्वर उवाच–जलन्धरः कथं विष्णो न हतः सङ्गरे त्वया। तद्गृहं चापि यातोऽसि त्यक्त्वा वैकुण्ठमात्मनः ॥७ ॥ विष्णुरुवाच–तवांशसम्भवत्वाच्च भ्रातृत्वाच्च तथा स्त्रियः। न मया निहतः संख्ये त्वमेनं जहि दानवम् ॥८ ॥ ईश्वर उवाच–नायमे-

विपत्ति को नहीं जानते? अतएव हे प्रभो! हम सब की रक्षा के लिये इस प्रबल राक्षस जलन्धर को मार डालिये ॥५ ॥ नारदजी ने कहा–देवताओं की इस वाणी को सुनकर हँसते हुए शंकरजी ने विष्णु भगवान् को बुलाकर यह कहा ॥६ ॥ श्री शंकर भगवान् ने कहा–हे विष्णु! आपने संग्राम में जलन्धर को क्यों नहीं मारा? और अपने वैकुण्ठ को छोड़कर उसके घर में जाकर क्यों रहते हो? विष्णु भगवान् ने कहा–आपके अंश से उत्पन्न और मेरी स्त्री लक्ष्मी के भाई होने के कारण मैंने उसे नहीं मारा। आप स्वयं उसे मारें ॥७–८ ॥ महादेवजी ने कहा–अति प्रतापी जलन्धर इन शस्त्रों से नहीं मारा जा सकेगा। इसलिये आप अपने तेज के अंश के साथ देवताओं के तेज का अंश शस्त्र के लिये मुझे दीजिये ॥९ ॥ नारदजी ने कहा–तब विष्णु आदि समस्त देवताओं ने अपना–अपना

भिर्महातेजा शस्त्रास्त्रैर्वध्यते मया। देवैः सह स्वतेजोंऽशो शस्त्रार्थे दीयतां मम ॥९॥
नारद उवाच–अथ विष्णुमुखा देवाः स्वतेजांसि ददुस्तदा। तान्यैक्यमगमन्नीशी दृष्ट्वा
चामुचन् महः ॥१०॥ तेनाकरोन् महादेवो महसा शस्त्रमुत्तमम्। चक्रं सुदर्शनं नाम
ज्वालामालातिभीषणम् ॥११॥ तेजःशेषेण च तदा वज्रं च कृतवान् हरिः। तावज्ज-
लन्धरो दृष्टः कैलासतलभूमिषु। हस्त्यश्वरथपत्तीनां कोटिभिः परिवारितः ॥१२॥ तं
दृष्ट्वाऽलक्षिता जग्मुर्देवाःसर्वे समागताः। गणाश्च समनह्यन्त युद्धगामित्व-
रान्विताः ॥१३॥ नन्दीगणेशसेनानीमुखाः सर्वे शिवाज्ञया। अवतेरुर्गणा वेगात् कैला-

तेजांश शिवजी को दे दिया, तब उस सम्पूर्ण एकत्रित तेज में महादेवजी ने अपना तेज भी मिला दिया ॥१०॥ उस एकत्रित तेज से शंकरजी ने देदीप्यमान तथा भीषण एक सुदर्शन चक्र नामक भयानक शस्त्र बनाया ॥११॥ तब तक करोड़ों हाथी, घोड़े, रथ और प्यादों से युक्त होकर कैलाश पर्वत की तलस्थ भूमि में जलन्धर दिखाई पड़ा ॥१२॥ उसे देखकर सब देवता जैसे चुपके से आये थे, वैसे ही चुपचाप चले गये। शिवजी के गण उसी समय शीघ्रतापूर्वक संग्राम करने के लिये उद्यत हो गये ॥१३॥ नन्दी, गणेश तथा स्वामिकार्तिक आदि गण शिवजी की आज्ञानुसार कैलाश पर्वत से

साद्युद्धदुर्मदाः ॥१४॥ ततः समभवद्युद्धं कैलासोपत्यकाभुवि। प्रमथाधिपदैत्यानां घोरं शस्त्रास्त्रसंकुलम् ॥१५॥ भेरीमृदङ्गशङ्खोघनिःस्वनैर्वीरहर्षणैः। गजाश्वरथशब्दैश्च नादिता भूर्व्यकम्पत ॥१६॥ शक्तितोमरबाणौघमुसलप्रासपट्टिशैः। व्यराजत नभः पूर्णमुल्काभिरिव संवृतम् ॥१७॥ निहतैः रथनागाश्वैर्भूस्तदा तैर्व्यराजत। वज्राहताचलशिरःशकलैरिव संवृता ॥१८॥ प्रमथाहतदैत्यौघान् भार्गवः समजीवयत्। युद्धे पुनः पुनस्तत्र मृतसञ्जीवनीबलात् ॥१९॥ तं दृष्ट्वा व्याकुलीभूताः गणाः सर्वे

झटपट नीचे युद्ध के लिये उतर आये ॥१४॥ कैलाश के समीप अमराई में महादेवजी के गण तथा अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित दैत्यों से घमासान युद्ध होने लगा ॥१५॥ योद्धाओं को प्रसन्न करने वाले भेरी, मृदङ्ग, शङ्खों के शब्दों से तथा हाथी, घोड़े, रथों के घोर शब्दों से व्याप्त होकर पृथ्वी कांप उठी ॥१६॥ शक्ति, तोमर, बाण, मुसल, पाश तथा पट्टिशों के शब्द से व्याप्त आकाशमण्डल अनन्त उल्कापात के सदृश सुशोभित हो गया ॥१७॥ भूमि पर मरे हुए हाथी तथा रथ के घोड़े इस प्रकार दिखाई दे रहे थे जैसे वज्र द्वारा खण्डित पर्वतों के शिखरों के टुकड़े भूमि पर शोभायमान हों ॥१८॥ शिवजी के गणों द्वारा युद्ध में मारे गये दैत्यों को शुक्राचार्य अपनी मृतसञ्जीवनी मन्त्र की शक्ति द्वारा

भयान्विताः। शशंसुर्देवदेवाय तत्सर्वं शुक्रचेष्टितम् ॥२०॥ अथ रुद्रमुखात्कृत्या बभूवातीव भीषणा। तालजंघा दरीवक्त्रा स्तनपीडितभूरुहा ॥२१॥ सा युद्धभूमिमासाद्य भक्षयन्ती महासुरान्। भार्गवं स्वभगे धृत्वा जगामान्तर्हिता नभः ॥२२॥ विधृतं भार्गवं दृष्ट्वा दैत्यान् सैन्यगणास्तदा। अम्लानवदना हर्षान्निजघ्नुर्युद्धदुर्मदाः ॥२३॥ अथाभज्यत दैत्यानां सेना गणभयार्दिता। वायुवेगेनाहतेव प्रकीर्णा तृणसंहतिः ॥२४॥

बारम्बार जीवित करते थे ॥१९॥ शुक्र का यह कृत्य देखकर व्याकुल तथा भयातुर गणों ने महादेवजी से सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥२०॥ इसके पश्चात् महादेवजी के मुख से ताड़ के वृक्षों के सदृश लम्बी कन्दरा के समान मुख वाली तथा स्तनों से वृक्षों को चकनाचूर कर देने वाली एक अति भयंकर कृत्या उत्पन्न हुई ॥२१॥ वह भयंकर कृत्या युद्ध भूमि में आकर बड़े-बड़े दैत्यों को भक्षण करती हुई शुक्राचार्य को अपनी योनि में रखकर आकाश में जाकर अदृश्य हो गयी ॥२२॥ शुक्राचार्य को पकड़ा हुआ देखकर युद्ध भूमि में प्रसन्नता और विकसित मुख वाले शिवजी के वीरगण दैत्य सेना को मारने लगे ॥२३॥ शिवगणों के भयानक आक्रमण से दैत्यों की सेना इस प्रकार तितर-बितर होने लगी, जैसे वायु के वेग से तृणसमूह इधर-उधर उड़ने लगते हैं ॥२४॥

भग्नां गणभयात्सेनां दृष्ट्वाऽमर्षयुता ययुः। निशम्भशुम्भौ सेनान्यौ कालनेमिश्च वीर्यवान् ॥२५ ॥

त्रयस्ते वारयामासुर्गणसेनां महाबलाः। मुञ्चन्तः शरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकाः ॥२६ ॥ ततो दैत्यशरौघास्ते शलभानामिव ब्रजाः। रुरुधुः खं दिशः सर्वा गणसेनामकम्पयन् ॥२७ ॥ गणाः शरशतैर्भिन्ना रुधिरासारवर्षिणः। वसन्ते किंशुकाभासा न प्राज्ञायन्त किञ्चन ॥२८ ॥ पतिताः पत्यमानाश्च भिन्नाश्छिन्नास्तदा गणाः। त्यक्त्वा संग्रामभूमिं ते सर्वेऽपि विमुखाः अभवन् ॥२९ ॥ ततः प्रभग्नं स्वबलं

रुद्रगणों के भय से भागती हुई दैत्यों की सेना को देखकर सेनापति शुम्भ, निशुम्भ और महाबली कालनेमि क्रोधित होकर वहां पहुंचे ॥२५ ॥

महान् पराक्रमी इन तीनों ने वर्षाकाल में मेघों के समान बाणों की वर्षा करते हुए शिवजी के बलवान उस गण-सेना को रोक लिया ॥२६ ॥ दैत्यों के बाणों ने टिड्डी दल के समान आकाश तथा दशों दिशाओं को रोक लिया। शिवजी के गण भय से कांपने लगे ॥२७ ॥ सैंकड़ों बाणों से विदीर्ण होने से रुधिर की धाराओं से व्यास वसन्त में पलाश पुष्प के समान सुशोभित शिवगणों के

विलोक्य शैलादिलम्बोदरकार्तिकेयाः। त्वरान्विताः दैत्यवरान् प्रसह्य निवारयामासुरमर्षिणस्ते ॥३०॥

अतिरिक्त वहां और कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था॥२८॥ कुछ स्वयं गिरते हुए और कुछ गिरने वाले छिन्न-भिन्न सब रुद्रगण संग्रामभूमि को छोड़कर भाग खड़े हुए॥२९॥ तत्पश्चात् शैल, गणेश तथा स्वामिकार्तिकेय अपनी सेना को नष्ट हुई देख कर क्रोधित होकर शीघ्र ही दैत्यों को रोकने में लग गये॥३०॥

श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये त्रयोदशोऽध्यायः समाप्तः॥१३॥



चौदहवां अध्याय

नारद उवाच—ते गणाधिपतीन् दृष्ट्वा नन्दीप्रमुखषणमुखान्। अमर्षादभ्यधावन्त द्वन्द्वयुद्धाय दानवाः ॥१॥ नन्दिनं कालनेमिश्च शुम्भो लम्बोदरं तथा। निशुम्भः षण्मुखं वेगादभ्यधावत दंशितः ॥२॥ निशुम्भः कार्तिकेयस्य मयूरं पञ्चभिः शरैः। हृदि विव्याध वेगेन मूर्च्छितः स पपात ह ॥३॥ ततः शक्तिधरः शक्तिं यावज्जग्राह रोषितः। तावन्निशुम्भो वेगेन स्वशक्त्या तमपातयत् ॥४॥ ततो नन्दी शतैर्बाणैर्कालनेमिमविध्यत।

नारदजी ने कहा—वे तीनों राक्षस, इन तीन सेनापतियों नन्दी, गणेशजी तथा स्वामिकार्तिकेय को देखकर क्रोधित हो कुश्ती लड़ने के लिये दौड़े ॥१॥ नन्दीश्वर से कालनेमि, गणेशजी से शुम्भ और स्वामिकार्तिकेय से निशुम्भ युद्ध करने के लिये गया ॥२॥ निशुम्भ ने कार्तिकेय के वाहन मयूर के हृदय में शीघ्रता से पाँच बाण मारे, जिससे मयूर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥३॥ कार्तिकेय क्रोधित होकर शक्ति को उठाना ही चाहते थे कि इतने में निशुम्भ ने तीव्रता से अपनी शक्ति से षडानन की शक्ति को काट दिया ॥४॥ नन्दीश्वर ने सैंकड़ों बाणों से कालनेमि पर प्रहार कर

सप्तभिश्च हयान् केतुं धनुः सारथिमच्छिनत् ॥५ ॥ कालनेमिस्तु संक्रुद्धो धनुश्चिच्छेद नन्दिनः। तदपास्य स शूलेन तं वक्षस्यहनद्बली ॥६ ॥ स शूलभिन्नहृदयो हताश्वा हतसारथिः। अद्रेः शिखरमामुच्य शैलाद्रिं सोऽप्यपातयत् ॥७ ॥ अथ शुम्भो गणेशश्च रथमूषकवाहनौ। युद्ध्यमानौ शरव्रातैः परस्परमविध्यताम् ॥८ ॥ गणेशस्तु तदा शुम्भं हृदि विव्याध पत्रिणा। सारथिं च त्रिभिर्बाणैः पातयामास भूतले ॥९ ॥ ततोऽतिक्रुद्धः शुम्भोऽपि बाणवृष्ट्या गणाधिपम्। मूषकं च त्रिभिर्विद्ध्वा ननाद जलदस्वनः ॥१० ॥

सात बाणों से घोड़ों, धनुष तथा सारथी को काट दिया ॥५ ॥ क्रुद्ध कालनेमि ने नन्दीश्वर के धनुष को काट दिया। नन्दीश्वर ने उसके आक्रमण को रोककर त्रिशूल से कालनेमि की छाती में प्रहार किया ॥६ ॥ कालनेमि का हृदय विदीर्ण हो गया तथा घोड़े और सारथी मर गये। तब कालनेमि ने भी पर्वत-शिखर के प्रहार से नन्दीश्वर को धराशायी कर दिया ॥७ ॥ एक ओर रथ तथा मूषकवाहन वाले श्रीगणेशजी और शुम्भ दोनों युद्ध करते हुए परस्पर एक-दूसरे पर बाणों की वर्षा करते हुए गुंथ गये ॥८ ॥ गणपति ने शुम्भ की छाती में बाण मार करके तीन बाणों से उसके सारथी को पृथ्वी पर गिरा दिया ॥९ ॥ अतिशय क्रोधित होकर शुम्भ ने भी गणेशजी पर बाणों की कराल वर्षा की

मूषकः शरभिन्नाङ्गश्चलितुं न शशोक ह । लम्बोदरः समुत्तीर्य पदातिरभवन्नृप ॥११॥
ततो लम्बोदरः शुम्भं हत्वा परशुना हृदि । अपातयत्तदा भूमौ मूषकं चारुहत्पुनः ॥१२॥
कालनेमिर्निशुम्भश्चाप्युभौ लम्बोदरं शरैः । युगपज्जघ्नतुः क्रोधात् तोत्रैरिव महा-द्विपम् ॥१३॥ तं पीड्यमानमालोच्य वीरभद्रो महाबलः । अभ्यधावत वेगेन भूतकोटि-युतस्तदा ॥१४॥ कूष्माण्डा भैरवाश्चापि वेताला योगिनीगणाः । पिशाचा योगिनीसंघा गणाश्चापि तमन्वयुः ॥१५॥ ततः किलकिलाशब्दैः सिंहानादैः सुघर्घरैः । निनादभरिता

और तीन बाणों से मूषक पर प्रहार कर मेघ की तरह गर्जना करने लगा ॥१०॥ गणेशजी का वाहन मूषक बाणों से अति पीडित होकर चलने में असमर्थ हो गया। तब गणेशजी मूषक से उतरकर पैदल चलने लगे ॥११॥ गणेशजी ने अपने फरसे से शुम्भ के हृदय में प्रहार कर उसे भूमि पर गिरा दिया और स्वयं फिर अपने मूषक पर सवार हो गये ॥१२॥ कालनेमि और निशुम्भ ये दोनों भी एकाएक गणेशजी को अंकुश से मदोन्मत्त हाथी के समान बाणों से मारने लगे ॥१३॥ गणेशजी को कष्ट में देखकर असंख्य भूतगणों को साथ लेकर पराक्रमी वीरभद्र शीघ्रता से दौड़कर वहाँ आये ॥१४॥ कूष्माण्ड, भैरव, वेताल, पिशाच तथा योगिनीगण, वीरभद्र के साथ आये ॥१५॥ तब

सर्वा पृथिवीं समकम्पत ॥१६॥ ततो भूतान्यधावन्त भक्षयन्ति स्म दानवान्। उत्पतन्त्यापतन्ति स्म ननृतुश्च रणाङ्गणे ॥१७॥ नन्दी च कार्तिकेयश्च समाश्वस्तौ त्वरान्वितौ। निजघ्नतुः रणे दैत्यान् निरन्तरशरव्रजैः ॥१८॥ छिन्नभिन्नाहतैर्दैत्यैः पतितैर्भक्षितैस्तदा। व्याकुला साऽभवत्सेना विषण्णवदनां तदा ॥१९॥ प्रतिध्वस्तां तदा सेनां दृष्ट्वा सागरनन्दनः। रथेनातिपताकेन गणानभिययौ बली ॥२०॥ हस्त्यश्वरथसंह्लादाः शंखभेरीस्वनास्तथा। अभवत् सिंहनादश्च सेनयोरुभयोस्तदा ॥२१॥

सैनिकों के सिंह के समान कोलाहल तथा घर्घर शब्द से पृथ्वी कांपने लगी ॥१६॥ तब उस युद्धक्षेत्र में भूतगण दैत्यों को खाते हुए ऊपर-नीचे उछलते हुए नाचने लगे ॥१७॥ नन्दीश्वर तथा स्वामिकार्तिकेय बड़ी सावधानी के साथ शीघ्रतापूर्वक बाणों को छोड़ते हुए संग्रामभूमि में दैत्यों को मारने लगे ॥१८॥ छिन्न-भिन्न, मारे गये तथा गिरे हुये और भक्षण किये जाने के कारण दैत्यों की सेना बहुत व्याकुल और उदास हुई ॥१९॥ अपनी सेना का क्षय देखकर ऊँची ध्वजा वाले रथ पर सवार होकर बलवान् जलन्धर शिवगणों के सन्मुख आया ॥२०॥ तब तो हाथी, घोड़े, शंख भेरी का भयंकर शब्द दोनों सेनाओं में होने लगा ॥२१॥ जलन्धर की बाणवृष्टि से आकाशमण्डल और

जलन्धर शरव्रातैर्नीहारपटलैरिव। द्यावापृथिव्योराच्छन्नमन्तरं समपद्यत ॥२२॥ गणेशं पञ्चभिर्विद्ध्वा शैलादिं नवभिः शरैः। वीरभद्रं च विंशत्या ननाद जलदस्वनः ॥२३॥ कार्तिकेयस्तदा दैत्यशक्त्या विव्याध सत्वरः। जुघूर्ण शक्तिनिर्भिन्नः किञ्चिद्व्याकुलमानसः ॥२४॥ ततः क्रोधपरीताक्षः कार्तिकेयं जलन्धरः। गदया ताडयामास स च भूमितलेऽपतत् ॥२५॥ तथैव नन्दिनं वेगादपातयत भूतले। ततो गणेश्वरः क्रुद्धो गदां परशुनाऽच्छिनत ॥२६॥ वीरभद्रस्त्रिभिर्बाणैर्हृदि विव्याध दानवम्। सप्तभिश्च

पृथ्वीतल मानो धुन्ध से आच्छादित हो गया ॥२२॥ जलन्धर ने गणेशजी पर पांच, नन्दीश्वर पर नौ, वीरभद्र के ऊपर बीस बाण छोड़कर मेघ के समान गर्जने लगा ॥२३॥ तब शीघ्र ही षडानन ने जलन्धर को अपनी शक्ति से मारा। उसके संधान से उसे कुछ घबड़ाहट हुई ॥२४॥ क्रोधित होकर जलन्धर ने स्वामि कार्तिक को गदा के आघात से पृथ्वी पर गिरा दिया ॥२५॥ नन्दीश्वर को भी उसी तरह शीघ्रता से पृथ्वी पर गिरा दिया। तब गणेशजी ने क्रोधित होकर उसकी गदा को फरसे से काट दिया ॥२६॥ वीरभद्र ने, जलन्धर को तीन बाणों से और सात बाणों से घोड़ों, ध्वजा, धनुष तथा छत्र को काट दिया ॥२७॥ तब जलन्धर ने अपनी अतिप्रचण्ड शक्ति से गणेशजी को गिरा दिया और

हयान् केतुं धनुश्छत्रं च चिच्छिदे ॥२७॥ ततोऽतिक्रुद्धो दैत्येन्द्रः शक्तिमुद्यम्य दारुणम्। गणेशं पातयामास रथं चान्यमथाऽऽरुहत् ॥२८॥ अभ्यधादथ वेगेन वीरभद्रं रुषान्वितः। ततस्तौ सूर्यसंकाशौ युयुधाते परस्परम् ॥२९॥ वीरभद्रः पुनस्तस्य हयान्बाणैरपातयत्। धनुश्चिच्छेद दैत्येन्द्रः पुप्लवे परिघायुध ॥३०॥ नारद उवाच—स वीरभद्रं त्वरयाभिगम्य जघान दैत्यः परिघेन मूर्ध्नि। सचापि वीरः प्रविभिन्नमूर्धा पपात भूमौ रुधिरं समुद्गिरन् ॥३१॥

स्वयं दूसरे रथ पर चढ़ गया ॥२८॥ वीरभद्र के ऊपर क्रोधित होकर रणभूमि में आया, तब सूर्य के समान देदीप्यमान दोनों वीर परस्पर युद्ध करने लगे ॥२९॥ वीरभद्र ने बाणों से उसके घोड़ों को मार गिराया, फिर जलन्धर ने वीरभद्र का धनुष काट दिया तथा अपना परिघ हाथ में लेकर कूदा ॥३०॥ नारदजी ने कहा—तब उस जलन्धर ने शीघ्रतापूर्वक वीरभद्र के समीप जाकर उसके मस्तक पर परिघ मारा, छिन्न मस्तक वाला वह वीर मुख से रुधिर वमन करता हुआ पृथ्वी में गिर पड़ा ॥३१॥

श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये जलन्धरोपाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः समाप्तः ॥१४॥

पन्द्रहवां अध्याय

नारद उवाच–पतितं वीरभद्रं तु दृष्ट्वा रुद्रगणाः भयात्। अगमंस्ते रणं हित्वा क्रोशमाना महेश्वरम् ॥१ ॥ अथ कोलाहलं श्रुत्वा गणानां चन्द्रशेखरः। अभ्यधावद् वृषभारूढः संग्रामं प्रहसन्निव ॥२ ॥ रुद्रमायान्तमालोक्य सिंहनादैर्गणाः पुनः। निवृत्ताः सङ्गरे दैत्यान्निजघ्नुः शरवृष्टिभिः ॥३ ॥ दैत्याश्च भीषणं दृष्ट्वा सर्वे चैव विदुद्रुवुः। कार्तिकव्रतिनं दृष्ट्वा पातकानीव तद्भयात् ॥४ ॥ अथ जलन्धरो दैत्यान्विवृतान्प्रेक्ष्य

नारदजी ने कहा–वीरभद्र को पृथ्वी पर गिरे हुए देखकर महादेव जी के गण भय से रण छोड़कर हाहाकार करते हुए भय से भाग कर शंकरजी के पास गये ॥१ ॥ महादेवजी कोलाहल सुनकर अपने गणों को भागते हुए देखकर बैल पर चढ़ कर हँसते हुए संग्राम के लिये आये ॥२ ॥ शंकर जी को आता हुआ देखकर सिंह की भांति गर्जना करते हुए रुद्रगण लौटे और बाणों की वर्षा से दैत्यों का संहार करने लगे ॥३ ॥ जिस प्रकार कार्तिक का व्रत करने वाले को देखकर पाप भागते हैं वैसे ही भयंकर शिवजी की भीषण मूर्ति को देखकर सब दैत्यगण भागने लगे ॥४ ॥ दैत्यों को

सङ्गरे। रोषादधावच्चण्डीशं मुञ्चन् बाणान्सहस्रशः ॥५ ॥ शुम्भो निशुम्भः श्वमुखो कालनेमिर्बलाहकः। खड्गरोमा प्रचंडश्च घस्मराद्याः शिवं ययुः ॥६ ॥ बाणान्धकारसंच्छन्नं दृष्ट्वा गणबलो शिवः। बाणजालमवच्छिद्य स्वबाणैरावृतं नभः ॥७ ॥ दैत्यांश्च बाणवात्याभिः पीडितानकरोत्तदा। प्रचण्डबाणजालौघैरपातयत भूतले ॥८ ॥ खड्गरोम्णः शिरः कोपात्तदा परशुनाऽच्छिनत्। बलाहकस्य च शिरः खट्वाङ्गेनाकरोद् द्विधा ॥९ ॥ बध्वा च घस्मरं दैत्यं पाशेनाभ्यहनद्भुवि। वृषशृङ्गहताः केचिद् केचिद्

युद्ध से भागता हुआ देखकर हज़ारों बाणों की वर्षा करता हुआ जलन्धर महादेवजी के ऊपर टूट पड़ा ॥५ ॥ शुम्भ, निशुम्भ, श्वमुख, कालनेमि, बलाहक, खड्गरोमा, प्रचण्ड और घस्मर आदि दैत्य भी शिवजी के समीप युद्ध के लिये दौड़े गये ॥६ ॥ बाणों के अन्धकार से अपनी सेना को ढका हुआ देखकर शिवजी ने उस बाणसमूह को काटकर अपने बाणसमूह से आकाश को ढँक दिया ॥७ ॥ शिवजी ने दैत्यों को अपने बाण रूपी वायु से पीड़ित करते हुए प्रचण्ड बाणों से पृथ्वी पर गिरा दिया ॥८ ॥ महावेदजी ने क्रोधित होकर फरसे के द्वारा खड्गरोमा का शिर काट दिया और खट्वाङ्ग से बलाहक के मस्तक के दो टुकड़े कर दिये ॥९ ॥ घस्मर दैत्य को फाँसी से बाँधकर

बाणैर्निपातिताः ॥१०॥ न शेकुरसुराः स्थातुं गजाः सिंहार्दिता इव। ततः क्रोधपरीतात्मा वेगाद्रुद्रं जलन्धरः ॥११॥ आह्वयामास समरे तीव्राशनिसमस्वनः। जलन्धर उवाच– युद्ध्यस्वाद्य मया सार्द्धं किमेभिर्निहतैस्तव ॥१२॥ यच्च किञ्चिद् बलं तेऽस्ति तद्दर्शय जटाधर। इत्युक्त्वा दशभिर्बाणैर्जघान वृषभध्वजम् ॥१३॥ तान्प्राप्तान्निशितैर्बाणै-श्चिच्छेद प्रहसन् शिवः। ततो हयान् ध्वजं छत्रं धनुश्चिच्छेद सप्तभिः ॥१४॥ स च्छिन्नधन्वा विरथो गदामुद्यम्य वेगवान्। अभ्यधावच्छिवस्तावद् गदां बाणैस्त्रिधा-

पृथ्वी पर पटक दिया। किसी दैत्य को बैल के सींगों से, किसी दैत्य का बाणों से संहार किया ॥१०॥ शेष दैत्य गण सिंह से व्यथित हाथी के सदृश क्षण भर भी युद्धक्षेत्र में ठहरने में असमर्थ रहे। तब अति क्रोधित होकर जलन्धर युद्ध के लिये शंकरजी के समीप आया ॥११॥ वज्र के समान तीव्र गर्जना करता हुआ जलन्धर महादेवजी को युद्ध के लिये ललकारने लगा। जलन्धर ने कहा–हे जटाधर! ॥१२॥ आज मेरे साथ युद्ध करो। इन दुर्बलों को मारने से क्या लाभ है? जो कुछ भी तुम्हारे पास शक्ति हो उस से मेरे साथ युद्ध करके दिखाओ। ऐसा कहकर जलन्धर ने दस बाणों से महादेवजी पर प्रहार किया ॥१३॥ महादेवजी ने उन बाणों को हँसते हुए अपने तीखे अमोघ बाणों

ऽच्छिनत् ॥१५॥ तथापि मुष्टिमुद्यम्य ययौ रुद्रं जिघांसया। तावच्छिवेन बाणौघैः क्रोशमात्रमपाकृतः ॥१६॥ ततो जलन्धरो दैत्यो मत्वा रुद्रं बलाधिकम्। ससर्ज मायां गान्धर्वीमद्भुतां रुद्रमोहिनीम् ॥१७॥ ततो जगुश्च ननृतुर्गन्धर्वाप्सरसां गणाः॥ तालवेणुमृदङ्गाद्यान् वादयन्ति स्म चापरे ॥१८॥ तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं रुद्रा नादविमोहितः। पतितान्यपि शस्त्राणि करेभ्यो न विवेद सः ॥१९॥ एकाग्रीभूतमालोक्य

से बीच ही में काट दिया और तीव्र सात बाणों से उसके घोड़े, ध्वजा, छत्र और धनुष को भी काट दिया ॥१४॥ धनुष और रथ कट जाने पर जलन्धर गदा लेकर तीव्रता से दौड़ा। रुद्रजी ने बाणों से उसकी गदा के तीन टुकड़े कर दिये ॥१५॥ तब भी वह मुष्टिका प्रहार द्वारा महादेवजी को मारने पर उद्यत होकर समीप आया। तब तक रुद्रजी ने उसे बाणों के समूह द्वारा एक कोस की दूर पर फेंक दिया ॥१६॥ शंकर जी को अपने से अधिक बलशाली जानकर रुद्र को सम्मोहन करने के लिये उसने गन्धर्वी माया रची ॥१७॥ माया रचते ही वहाँ पर गन्धर्व और अप्सरागण गाने, बजाने और नाचने लगे। कुछ लोग ताल, वंशी, मृदङ्ग आदि बाजे बजाते थे ॥१८॥ इस आश्चर्य को देखकर महादेवजी ताल स्वर के शब्द से मोहित हो गये और हाथों से शस्त्रों के गिरने का भी ज्ञान उन्हें नहीं

रुद्रं दैत्यो जलन्धरः। कामार्तः स जगामाशु यत्र गौरी स्थिताऽभवत् ॥२०॥ युद्धे शुम्भनिशुम्भाद्यौ स्थापयित्वा महाबलौ। दशदोर्दण्डपञ्चास्यस्त्रिनेत्रश्च जटाधरः ॥२१॥ महावृषभमारूढः स बभूव जलन्धरः। अथो रुद्रं समायान्तमालोक्य भववल्लभा। अभ्यायययौ सखीमध्यात् तद्दर्शनपथेऽभवत् ॥२२॥ यावद्ददर्श चार्वङ्गीं पार्वतीं दनुजेश्वरः। तावत्स वीर्यं मुमुचे जडाङ्गश्चाभवत्तदा ॥२३॥ अथ ज्ञात्वा तदा गौरी दानवं भयविह्वला। जगामान्तर्हिता वेगात् सा तदोत्तरमानसम् ॥२४॥ तामदृष्ट्वा

हुआ ॥१९॥ महांदेवजी को एकाग्रचित्त देख जलन्धर कामपीड़ित होकर शीघ्र ही पार्वती के निकट आया ॥२०॥ युद्धभूमि की रक्षा के लिये पराक्रमी शुम्भ तथा निशुम्भ को नियुक्त किया। दसभुजा, पांच मुख, तीन नेत्र और जटा को धारण कर महाबैल पर सवार होकर जलन्धर पार्वती जी के समीप गया। महादेव जी को आते देखकर सखियों के बीच से उठकर पार्वती महादेवजी के सन्मुख आईं ॥२१-२२॥ पार्वती के सौन्दर्य को देखते ही उसका वीर्य स्खलित हो गया और उस दैत्य के सभी अंग जकड़ गये ॥२३॥ उसको जलन्धर समझ कर भय से विह्वल, जगतमाता पार्वती वहीं शीघ्रतापूर्वक अन्तर्धान होकर उत्तर मानसरोवर पर चली गईं ॥२४॥ पार्वती को वहां से

ततो दैत्यः क्षणाद्विद्युल्लतामिव। जवेनागात्पुनर्युद्धे यत्र देवो वृषध्वजः ॥२५॥
पार्वत्यपि भयाद्विष्णुं सस्मार मनसा तदा। तावद्ददर्श तं देवं सूपविष्टं समीपगम् ॥२६॥
पार्वत्युवाच—विष्णो! जलन्धरो दैत्यः कृतवान् परमाद्भुतम्। तत्किं न विदितं तेऽस्ति चेष्टितं तस्य दुर्मतेः ॥१७॥ विष्णुरुवाच—तेनैव दर्शितः पन्था वयमप्यन्वयामहे। नान्यथा स भवेद्वध्यः पातिव्रत्यसुरक्षितः ॥२८॥ नारद उवाच—जगाम विष्णुरित्युक्त्वा पुनर्जालन्धरं पुरम्। अथ रुद्रश्च गन्धर्वानुगतः सङ्गरे स्थितः ॥२९॥ अन्तर्धानगतां

बिजली के समान अन्तर्धान हुई देखकर वेगपूर्वक वह दैत्यराज महादेवजी के सामने युद्धभूमि में आया ॥२५॥ पार्वतीजी ने भी डर से मन में विष्णु भगवान् को स्मरण किया और स्मरण करते ही पास में बैठे हुए विष्णु भगवान् को देखा ॥२६॥ पार्वती जी ने कहा—हे विष्णो! पापी जलन्धर ने जो अद्भुत कार्य किया है, क्या उसकी यह कुचेष्टा आपसे छिपी है? ॥२७॥ विष्णु भगवान् ने कहा—उसी ने जब यह मार्ग दिखलाया है तो उसी मार्ग से हम लोग भी चलें। इसके अतिरिक्त पातिव्रत्य-धर्म से सुरक्षित वह दुष्ट कभी नहीं मारा जा सकता ॥२८॥ नारदजी ने कहा—ऐसा कहकर विष्णु भगवान् जलन्धर के नगर में पहुंचे, इधर महादेवजी गन्धर्वों से लड़ने के लिये रण में खडे थे। माया

मायां दृष्ट्वा स बुबुधे तदा ॥३०॥ ततो भवो विस्मितमानसः पुनर्जगाम युद्धाय जलन्धरं रुषा। स चापि दैत्यः पुनरागतं शिवं दृष्ट्वा शरौघं समवाकिरद्रणे ॥३१॥

के नाश हो जाने पर शंकरजी चेतना में आये ॥२९-३०॥ फिर रुद्र चकित मन से क्रोधित हो जलन्धर के साथ युद्ध करने के लिये युद्ध क्षेत्र आये। जलन्धर भी शिवजी को युद्ध में आया देखकर बाणों की वर्षा करने लगा ॥३१॥

श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये शिवजलन्धरोपाख्याने पञ्चदशोऽध्यायः समाप्तः ॥१५॥



सोलहवां अध्याय

नारद उवाच–विष्णुर्जलन्धरं दृष्ट्वा तद्दैत्यपुटभेदनम्। पातिव्रतस्य भङ्गाय वृन्दायाश्चाकरोन्मतिम् ॥१॥ अथ वृन्दारका देवी स्वप्नमध्ये ददर्श ह। भर्तारं महिषारूढं तैलाभ्यक्तं दिगम्बरम् ॥२॥ कृष्णप्रसूनभूषाढ्यं क्रव्यादगणसेवितम्। दक्षिणाशागतं मुण्डं तमसाप्यावृतं तदा ॥३॥ स्वपुरं सागरे मग्नं सहसैवात्मना सह। ततः प्रबुद्धा स बाला तत्स्वप्नं प्रविचिन्वती ॥४॥ ददर्शोदितमादित्यं सच्छिद्रं निष्प्रभं मुहुः।

नारदजी ने कहा–विष्णु ने जलन्धर को देखकर उसको नाश से बचाने वाली उसकी पत्नी वृन्दा के पतिव्रता धर्म को भ्रष्ट करने के लिये सोचा ॥१॥ वृन्दादेवी ने स्वप्न में अपने पति को भैंसे पर सवार हुए, शरीर में तेल लगाये, नग्न देखा ॥२॥ वह काले फूलों की माला धारण किये, पितरों-भूतों के समूह से घिरा हुआ, अन्धकार से आच्छादित और दक्षिण दिशा की ओर जाता हुआ स्वप्न में दिखाई दे रहा था ॥३॥ शीघ्र ही अपने साथ अपनी नगरी को समुद्र में डूबती हुई देखा। तब पतिव्रता स्त्री "वृन्दा" नींद उचटने पर उस दुःस्वप्न पर विचार करने लगी ॥४॥ धुँधले तथा अनेक

मायां दृष्ट्वा स बुबुधे तदा ॥३० ॥ ततो भवो विस्मितमानसः पुनर्जगाम युद्धाय जलन्धरं रुषा। स चापि दैत्यः पुनरागतं शिवं दृष्ट्वा शरौघं समवाकिरद्रणे ॥३१ ॥

के नाश हो जाने पर शंकरजी चेतना में आये ॥२९-३० ॥ फिर रुद्र चकित मन से क्रोधित हो जलन्धर के साथ युद्ध करने के लिये युद्ध क्षेत्र आये। जलन्धर भी शिवजी को युद्ध में आया देखकर बाणों की वर्षा करने लगा ॥३१ ॥

श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये शिवजलन्धरोपाख्याने पञ्चदशोऽध्यायः समाप्तः ॥१५ ॥



सोलहवां अध्याय

नारद उवाच–विष्णुर्जलन्धरं दृष्ट्वा तद्दैत्यपुटभेदनम्। पातिव्रतस्य भङ्गाय वृन्दायाश्चाकरोन्मतिम् ॥१ ॥ अथ वृन्दारका देवी स्वप्नमध्ये ददर्श ह। भर्तारं महिषारूढं तैलाभ्यक्तं दिगम्बरम् ॥२ ॥ कृष्णप्रसूनभूषाढ्यं क्रव्यादगणसेवितम्। दक्षिणाशागतं मुण्डं तमसाप्यावृतं तदा ॥३ ॥ स्वपुरं सागरे मग्नं सहसैवात्मना सह। ततः प्रबुद्धा स बाला तत्स्वप्नं प्रविचिन्वती ॥४ ॥ ददर्शोंदितमादित्यं सच्छिद्रं निष्प्रभं मुहुः।

नारदजी ने कहा–विष्णु ने जलन्धर को देखकर उसको नाश से बचाने वाली उसकी पत्नी वृन्दा के पतिव्रता धर्म को भ्रष्ट करने के लिये सोचा ॥१ ॥ वृन्दादेवी ने स्वप्न में अपने पति को भैंसे पर सवार हुए, शरीर में तेल लगाये, नग्न देखा ॥२ ॥ वह काले फूलों की माला धारण किये, पितरों-भूतों के समूह से घिरा हुआ, अन्धकार से आच्छादित और दक्षिण दिशा की ओर जाता हुआ स्वप्न में दिखाई दे रहा था ॥३ ॥ शीघ्र ही अपने साथ अपनी नगरी को समुद्र में डूबती हुई देखा। तब पतिव्रता स्त्री "वृन्दा" नींद उचटने पर उस दुःस्वप्न पर विचार करने लगी ॥४ ॥ धुँधले तथा अनेक

तदनिष्टमिति ज्ञात्वा रुदती भयविह्वला ॥५ ॥ कुत्रचिन्नालभच्छान्तिं गोपुराट्टाल-भूमिषु। ततः सखीद्वययुता नगरोद्यानमागमत् ॥६ ॥ संत्रस्ता साऽभ्रमद् बाला नाल-भत्कुत्रचित्सुखम्। वनाद्वनान्तरं याता नैव वेदात्मनः सुखम् ॥७ ॥ ततः सा भ्रमती बाला ददर्शातीव भीषणौ। राक्षसौ सिंहवदनौ दंष्ट्राननविभीषणौ ॥८ ॥ तौ दृष्ट्वा विह्वलातीव पलायनपराऽभवत्। ददर्श तापसं शान्तं सशिष्यं मौनमास्थितम् ॥९ ॥ ततस्तत्कण्ठमाव्रज्य निजां बाहुलतां भयात्। मुने मां रक्ष शरणमागतास्मीत्य-

छिद्रों से युक्त सूर्यनारायण को उगते देखा। यह सब अनिष्ट समझकर रोती हुई वह भयभीत हो गई ॥५ ॥ जब गोपुर तथा प्रासाद में कहीं भी शान्ति न मिली तब दो सखियों को साथ लेकर नगर के बाग में गई ॥६ ॥ परन्तु दुःस्वप्न की चिन्ता से भीत वृन्दा को कहीं भी सुख नहीं मिला। वह एक बाग से दूसरे बाग में जाती थी। तब भी शान्ति न मिली ॥७ ॥ इसके बाद वन में घूमती हुई उसने सिंह के समान आकृति वाले, भयंकर दांत तथा विकराल नेत्र वाले दो राक्षसों को देखा ॥८ ॥ उन्हें देखकर वह व्याकुल होकर भागने लगी। उसी समय अपने शिष्य के साथ मौन बैठे हुए शान्त स्वरूप एक तपस्वी को भी उसने देखा ॥९ ॥ तब भय से अपने दोनों हाथों को ऋषि के कण्ठ में

भाषत ॥१०॥ मुनिस्तां विह्वलां दृष्ट्वा राक्षसानुगतां तदा। हुङ्कारेणैव तौ घोरौ चकार विमुखौ रुषा ॥११॥ तौ हुङ्कारभयत्रस्तौ दृष्ट्वा च विमुखौ गतौ। प्रणम्य दण्डवद् भूमौ वृन्दा वचनमब्रवीत् ॥१२॥ वृन्दोवाच—रक्षिताहं त्वया घोराद्भयाद-स्मात्कृपानिधे। किञ्चिद्विज्ञप्तमिच्छामि कृपया तन्निशामय ॥१३॥ जलन्धरो हि मद्भर्ता रुद्रं योद्धुं गतः प्रभो। स तत्रास्ते गतो युद्धे तन्मे कथय सुव्रत ॥१४॥ नारद उवाच—मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य कृपयोर्ध्वमवैक्षत। तावत्कपी समायातौ प्रणम्य चाग्रतः

डालकर बोली कि हे महाराज! मैं आपकी शरण में हूं, इन भयंकर राक्षसों से मेरी रक्षा करिये ॥१०॥ मुनि ने राक्षसों से डरी हुई, राक्षसों द्वारा पीछा की हुई बाला को देखकर हुङ्कार ही से उन दोनों राक्षसों को पीछे भगा दिया ॥११॥ उन राक्षसों को हुङ्कार के भय से भयभीत और भागे हुए देखकर भूमि में दण्डवत् प्रणाम कर वृन्दा कहने लगी ॥१२॥ वृन्दा ने कहा—हे कृपानिधे! भयङ्कर भय से आपने मेरी रक्षा की है, इसलिये मैं आप से कुछ विनय करना चाहती हूं, आप कृपाकर सुनिये ॥१३॥ हे सुव्रत! मेरे पतिदेव जलन्धर महादेवजी के साथ युद्ध करने के लिये गये हैं, वे युद्ध में कैसे हैं आप कृपाकर कहिये ॥१४॥ नारदजी ने कहा—उसका वचन सुनते ही मुनि ने कृपादृष्टि से ऊपर

स्थितौ ॥१५॥ ततस्तद्भ्रूलतां संज्ञां नियुक्तौ गगनं गतौ। गत्वा क्षणार्धादागत्य प्रणतावग्रतः स्थितौ ॥१६॥ शिरःकबन्धहस्तौ च दृष्ट्वाब्धितनयस्य सा। पपात् मूर्च्छिता भूमौ भर्तुर्व्यसनदुःखिता ॥१७॥ कमण्डलूदकैः सिक्ता मुनिनाऽऽश्वासिता तदा। स्वभर्तृभाले सा भालं कृत्वा दीना रुरोद ह ॥१८॥ वृन्दोवाच–यः पुरा सुखसंवादे विनोदयसि मां प्रभो। स कथं न वदस्यद्य वल्लभां मामनागसम् ॥१९॥ येन देवाः सगन्धर्वाः निर्जिता विष्णुना सह। स कथं तापसेनाद्य त्रैलोक्यविजयी हतः ॥२०॥

को देखा, उसी समय दो बन्दर वहां पर आये और प्रणाम कर मुनि के सन्मुख बैठ गये ॥१५॥ इसके बाद वे दोनों बन्दर मुनि की भ्रुकुटि का संकेत पाकर आकाश मण्डल में उड़ गये और क्षणभर में ही लौट कर मुनि के सामने प्रणाम करके बैठ गये ॥१६॥ दोनों बन्दरों ने हाथ में मृत जलन्धर का सिर सहित धड़ देखकर वह पति विनाश के दुःख से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥१७॥ मुनि ने वृन्दा के ऊपर कमण्डलु का जल छिड़ककर सचेत किया, फिर वृन्दा दीन भाव से अपने पति के मस्तक से अपना मस्तक मिलाकर रोने लगी ॥१८॥ वृन्दा ने कहा–हे प्रभो! आप पहले मधुरालाप से मुझे प्रसन्न रखते थे, परन्तु आज आप मुझ निरपराधिनी दासी से क्यों नहीं बोलते ॥१९॥

नारद उवाच–रुदित्वेति तदा वृन्दा तं मुनिं वाक्यमब्रवीत्। वृन्दोवाच–कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ जीवयैनं मम प्रियम्॥२१॥ त्वमेवास्य मुने शक्तो जीवनाय मतो मम। नारद उवाच–इति तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रहसन्मुनिरब्रबीत्॥२२॥ मुनिरुवाच–नायं जीवयितुं शक्यो रुद्रेण निहतो युधि। तथापि त्वत्कृपाविष्ट एनं सञ्जीवयाम्यहम्॥२३॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विप्रस्तावत्सागर नन्दनः। वृन्दामालिङ्गय तद्वक्त्रं चुचुम्बे प्रीत-

आपने जिस विष्णु के सहित सब देवताओं और गन्धर्वों को जीत लिया था, उस तीनों लोकों में विजेता आपको तपस्वी शिव ने कैसे मार दिया॥२०॥

नारदजी ने कहा–इस प्रकार विलाप करती हुई वृन्दा मुनि से कहने लगी। वृन्दा ने कहा–हे कृपानिधे! हे मुनिवर! मेरे प्रिय पति को आज जीवन दान दीजिये। हे मुने! मेरा यह मत है कि आप ही मेरे मृतपति के जीवनदाता हैं॥२१॥ नारदजी ने कहा–उसका ऐसा वचन सुनकर हंसते हुए मुनि ने कहा–यह तेरा पति महादेव जी के हाथ से युद्ध में मारा गया है, अतः कोई इसे जिलाने में समर्थ नहीं हो सकता। तब भी तुम्हारे ऊपर कृपाकर इसको मैं जीवन दान देता हूं॥२२–२३॥ यह कहकर मुनि अन्तर्धान हो गये। तब जलन्धर क्रोधित हो वृन्दा को आलिङ्गन कर प्रेमपूर्वक

मानसः ॥२४॥ अथ वृन्दाऽपि भर्तारं दृष्ट्वा हर्षितमानसा। रेमे तद्वनमध्यस्था तद्युक्ता बहुवासरम् ॥२५॥ नारद उवाच—कदाचित्सुरतस्यान्ते दृष्ट्वा विष्णुं तमेव च। निर्भर्त्स्य क्रोधसंयुक्ता तदा वचनमब्रवीत् ॥२६॥ वृन्दोवाच—धिक्त्वदीयं हरेः शीलं परदाराभिगामिनः। ज्ञातोऽसि त्वं मया सम्यक् मायी प्रत्यक्षतापसः ॥२७॥ यौ त्वया मायिनौ द्वाःस्थौ स्वकीयौ दर्शितौ मम। तावेव राक्षसौ भूत्वा भार्यां तव हरिष्यतः ॥२८॥ त्वं चापि भार्यादुःखार्तो वने कपिसहायवान्। मृगः सर्वेश्वरेणायं यस्ते शिष्यत्व-

उसके मुख का चुम्बन करने लगा ॥२४॥ तब वृन्दा भी अपने पति को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती हुई उसी वन में जलन्धर के साथ बहुत दिनों तक विहार करने लगी ॥२५॥ नारद ने कहा—एक समय सहवास के अन्त में उसको ज्ञान हुआ कि ये विष्णु हैं—यह जानकर फटकारती हुई क्रोधित वृन्दा बोली ॥२६॥ वृन्दा ने कहा—हे हरे! पराई—स्त्री के साथ रमण करने वाले आपको धिक्कार है, मैंने भली-भांति समझ लिया कि आपही मायावी तपस्वी थे ॥२७॥ वे दोनों माया के राक्षस जो आपने पहले दिखाये थे वे ही दोनों राक्षस होकर तुम्हारी स्त्री को हरेंगे ॥२८॥ स्वयं तुम भार्या के दुःख से दुःखी होकर वन में बन्दरों से सहायता लोगे। और समग्र संसार के स्वामी होते हुए भी तुम

मागतः ॥२९ ॥ इत्युक्त्वा सा तदा वृन्दा प्राविशद्धव्यवाहनम् । विष्णुना वार्यमाणाऽपि तस्यामासक्तचेतसा ॥३० ॥ ततो हरिस्तामनुसंस्मरन्मुहुर्वृन्दान्वितो भस्मरजो-ऽवगुण्ठितः । तत्रैव तस्थौ सुरसिद्धसंघैः प्रबोध्यमानोऽपि ययौ न शान्तिम् ॥३१ ॥

वन-वन में स्त्री के वियोग में घूमते फिरोगे और यह जो तुम्हारा शिष्य बना था वह मृग होगा-ऐसा कहकर वृन्दा ने विष्णु भगवान् के बारम्बार रोकने पर भी अग्नि में प्रवेश किया ॥२९-३० ॥ तब विष्णु भगवान् बार-बार वृन्दा का ही स्मरण करते हुए और उनकी चिता की भस्म तथा धूलि को शरीर में लगाते हुए वहीं व्याकुल होकर पड़े रहे, फिर देवताओं, सिद्धों तथा मुनियों के बहुत समझाने पर भी उनको कुछ भी शान्ति न हुई ॥३१ ॥

श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये वृन्दोपाख्याने षोडशोऽध्यायः समाप्तः ॥१६ ॥



सत्रहवां अध्याय

नारद उवाच—ततो जलन्धरो दृष्ट्वा रुद्रमद्भुतविक्रमम्। चकार मायया गौरीं त्र्यम्बकं मोहितुं तदा॥१॥ रथोपरि च तां बध्वा रुदतीं पार्वतीं शिवः। निशुम्भ-प्रमुखाद्यैश्च वध्यमानां ददर्श सः॥२॥ गौरीं तथाविधां दृष्ट्वा शिरोऽप्युद्विग्नमानसः। अवाङ्मुख स्थितस्तूष्णीं विस्मृत्य स्वपराक्रमम्॥३॥ ततो जलन्धरो वेगात् त्रिभि-र्विव्याध सायकैः। आपुङ्खमग्नैस्तं रुद्रं शिरस्युरसि चोदरे॥४॥ तो जज्ञे स तां माया

नारदजी ने कहा—जलन्धर ने शिवजी का अद्भुत पराक्रम देखकर उनको धोखा देने के लिये माया की पार्वती का निर्माण किया॥१॥ रोती हुई और निशुम्भादि दैत्यों के द्वारा सताई जाती और रथ में बँधी हुई पार्वती को देखकर शिव ने देखा॥२॥ पार्वती को इस अवस्था में देखकर शिवजी स्वयं भी व्याकुल चित्त हो गये और अपने पराक्रम को भूलकर कुछ देर के लिये चुपचाप चित्र के समान खड़े रह गये॥३॥ तब तक जलन्धर ने शीघ्रता से शिवजी के शिर, छाती तथा पेट में तीन बाण मारे॥४॥ तब विष्णु भगवान् के समझाने पर महादेव जी को माया का ज्ञान हुआ, तब तो शिव

विष्णुना न प्रबोधितः। रौद्ररूपधरो जातो ज्वालामालातिभीषणः ॥५ ॥ तस्या-तीव महारौद्रं दृष्ट्वा रूपं महासुराः। न शेकुः सम्मुखे स्थातुं भेजिरे ते दिशो दश ॥६ ॥ ततः शापं ददौ रुद्रस्तयोः शुम्भनिशुम्भयोः। मम युद्धादपक्रान्तौ गौर्या वध्यौ भविष्यथः ॥७ ॥ पुनर्जलन्धरो वेगाद्ववर्ष निशितैः शरैः। बाणान्धकारैः सच्छन्नं तदा भूमितलं महत् ॥८ ॥ यावद्रुद्रश्चिच्छेद तस्य बाणगणं त्वरात्। तावत्स परिघेणाशु जघान वृषभं बली ॥९ ॥ वृषस्तेन प्रहारेण परावृत्तो रणाङ्गणात्। रुद्रेणाकृष्यमाणोऽपि

ने अग्निपुञ्ज की तरह भयंकर रूप धारण किया ॥५ ॥ रुद्र जी का ऐसा भयंकर रूप देखकर असुर और दैत्य उनके सामने से दशों दिशाओं में भाग गये ॥६ ॥ तब शिवजी ने शुम्भ और निशुम्भ को शाप दिया कि मेरे युद्ध से तू भाग गया है इस कारण गौरी जी द्वारा तुम दोनों मरोगे ॥७ ॥ फिर जलन्धर ने वेग से तीखे बाणों की वर्षा की, उससे सारी पृथ्वी में घोर अन्धकार छा गया ॥८ ॥ शिवजी उसके बाणों को काटना ही चाहते थे तब तक जलन्धर ने परिघ से शिवजी के बलवान बैल पर प्रहार किया ॥९ ॥ उस आघात से बैल रणभूणि से भाग गया। शिवजी के खींचने पर भी वह रण में ठहर न सका ॥१० ॥ तब शिवजी ने अति क्रोधित हो अति रुद्र रूप धारण कर बड़े वेग

न तस्थौ रणभूमिषु ॥१० ॥ ततः परमसंक्रुद्धो रुद्रो रौद्रवपुर्धरः । चक्रं सुदर्शनं वेगात् चिक्षेपादित्यवर्चसम् ॥१२ ॥ रथात्कायः पपातास्य नादयन् वसुधातलम् । तेजश्च निर्गतं देहात् तद्रुद्रे लयमागतम् ॥१३ ॥ वृन्दादेहोद्भवं तेजस्तद्गौर्यां विलयं गतम् । अथ ब्रह्मादयो देवाः हर्षादुत्फुल्ललोचनाः ॥१४ ॥ प्रणम्य शिरसा रुद्रं शशंसुर्विष्णुचेष्टितम् । देवा ऊचुः—महादेव त्वया देवाः रक्षिताः शत्रुजाद्भयात् ॥१५ ॥ किञ्चिदन्यत्समुद्भूतं तत्र किं करवामहे । वृन्दालावण्यसम्भ्रान्तो विष्णुस्तिष्ठति मोहितः ॥१६ ॥ ईश्वर से सूर्य के सदृश तेजस्वी सुदर्शन चक्र छोड़ा ॥११ ॥ आकाशमण्डल और पृथ्वी तल को भस्म करते हुए सुदर्शन चक्र ने पृथ्वी पर आकर जलन्धर के विशाल नेत्र वाले शिर को शरीर से अलग कर दिया ॥१२ ॥ इसके बाद उसका शरीर शब्द करता हुआ रथ से भूमि पर गिर गया और जलन्धर का तेज शिवजी में विलीन हो गया ॥१३ ॥ वृन्दा के शरीर से निकलता हुआ तेज पार्वती के शरीर में लीन हो गया । यह दृश्य देखकर ब्रह्मादि देवता आनन्दित हो गये ॥१४ ॥ शिव ने पार्वती को प्रणाम कर विष्णु भगवान् के कार्य की सराहना करते हुए देवताओं ने कहा—हे महादेव ! आपने हम लोगों की शत्रुओं के भय से रक्षा की है ॥१५ ॥ हे प्रभो ! यहां तो कुछ और हो गया है, उसके लिये हम

उवाच–गच्छध्वं शरणं देवाः विष्णोर्मोहापनुत्तये। शरण्यां मोहिनीं मायां सा वः कार्यं करिष्यति ॥१७॥ नारद उवाच–इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवः सर्वभूतगणैस्तदा। देवाश्च तुष्टुवुर्मूलप्रकृतिं भक्तवत्सलाम् ॥१८॥ देवा ऊचुः–यदुद्भवाः सत्त्वरजस्तमोगुणाः सर्गस्थितिध्वंसनिदानकारिणः। यदिच्छया विश्वमिदं भवाभवौ तनोति मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥१९॥ या हि त्रयोविंशतिभेदशब्दिता जगत्यशेषे समधिष्ठिता परा। यद्रूपकर्माणि जडास्त्रयोऽपि देवास्तु मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥२०॥

लोग क्या करें? मृत वृन्दा के सौन्दर्य में विष्णु मुग्ध हो गये हैं और उसकी चिता पर ही बैठे हुए हैं ॥१६॥ शिवजी ने कहा–हे देवताओ! विष्णु का मोह दूर करने के लिये शरण्य–मोहिनी नाम की माया के पास जाओ। वह तुम लोगों का कार्य करेगी ॥१७॥ नारदजी ने कहा–ऐसा कहकर भूतगणों के साथ शिवजी अन्तर्धान हो गए, तब देवतागण भक्तों पर दया करने वाली मूलप्रकृति को प्रसन्न करने के लिये प्रार्थना करने लगे ॥१८॥ देवता कहने लगे–जिससे सत्त्व, रज और तमोगुण उत्पन्न हुआ है, संसार की उत्पत्ति, पालन तथा नाश का जो आदि कारण है और जिसकी इच्छा से संसार का कल्याण अथवा अकल्याण होता है ऐसी मूल प्रकृति को हम सब प्रणाम करते हैं ॥१९॥

यद्भक्तियुक्ताः पुरुषास्तु नित्यं दारिद्र्यभीमोहपराभवादीन्। न प्राप्नुवन्त्येव हि भक्तवत्सलां सदैव मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥२१॥ नारद उवाच–स्तोत्रमेतत् त्रिसन्ध्यं यः पठेदेकाग्रमानसः। दारिद्र्यमोहदुःखानि न कदाचित्स्पृशन्ति तम् ॥२२॥ इत्थं स्तुवन्तस्ते देवास्तेजोमण्डलमास्थितम्। ददृशुर्गगनं तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥२३॥ तन्मध्याद्भारतीं सर्वे शुश्रुवुर्व्योमचारिणीम्। शक्तिरुवाच–अहमेव त्रिधा भिन्ना

जो तेईस भेदों से प्रसिद्ध कही गई है और निखिल संसार में यश नाम से विद्यमान है और जिसके रूप तथा कर्मों को ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी नहीं जान सकते ऐसी मूल प्रकृति को हम सब प्रणाम करते हैं ॥२०॥ जिसकी आराधना करने से प्राणी दरिद्रता, भय, मोह तथा निरादर नहीं पाता ऐसी भक्तवत्सला मूल प्रकृति को हम सब प्रणाम करते हैं ॥२१॥ नारद जी ने कहा–जो प्राणी इस स्तोत्र का एकाग्रचित्त होकर तीनों काल में पाठ करता है उसे दारिद्रय, मोह और दुःख स्पर्श भी नहीं करते ॥२२॥ इस प्रकार स्तुति करने वाले देवताओं ने आकाश मण्डल में अपनी ज्वाला से सब दिशाओं को देदीप्यमान करने वाले एक गोलाकार तेज को देखा ॥२३॥ उससे आकाशवाणी हुई। शक्ति ने कहा–मैं ही अनेक गुणों से युक्त तीन रूप में (लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती) रहती हूं ॥२४॥

तिष्ठामि विविधैर्गुणैः ॥२४॥ गौरी लक्ष्मी स्वरा ज्योती रजःसत्त्वतमोगुणैः । तत्र गच्छत ताः कार्यं विधास्यन्ति च वः सुराः ॥२५॥ नारद उवाच—शृण्वन्मामिति तां वाचमन्तर्धानमगान्महः ॥२६॥ देवानां विस्मयोत्फुल्लनेत्राणां तत्तदा नृप । ततः सर्वेऽपि ते देवाः गत्वा तद्वाक्यनोदिताः ॥२७॥ गौरीं लक्ष्मीं स्वरां चैव प्रणेमुर्भक्तितत्पराः । ततास्तास्तान् सुरान् दृष्ट्वा प्रणतान् भक्तवत्सलाः ॥२८॥ बीजानि प्रददुस्तेभ्यो वाक्यान्यूचुस्तदा च ताः । देव्य ऊचुः—इमानि तत्र बीजानि विष्णुर्यत्रावतिष्ठते ॥२९॥

गौरी, लक्ष्मी तथा सरस्वती इनमें ये तीनों (रज, सत्त्व, तम) गुण वर्तमान हैं, आप लोग वहां जाइये वे ही आप लोगों के कार्य को करेंगी ॥२५॥

नारद ने कहा—ऐसी वाणी सुनकर वह देवी लुप्त हो गई। आश्चर्य तथा विस्मय युक्त नेत्र वाले देवतागण इस आकाशवाणी को सुनने के पश्चात् उसके कथनानुसार उक्त तीनों देवियों के पास गये ॥२६॥ उसके कथनानुसार सब देवताओं ने जाकर भक्तिपूर्वक गौरी, लक्ष्मी तथा सरस्वती देवी को प्रणाम किया ॥२७॥ तीनों देवियों ने देवताओं को बीज देकर कहा—कि इन बीजों को जहां पर विष्णु हैं ॥२८॥ वहीं पर बीज देना, आप लोगों का कार्य सिद्ध हो जावेगा ॥२९॥ नारद जी ने

निवपध्वं ततः कार्यं भवतां सिद्धिमेष्यति ॥३०॥ नारद उवाच–ततस्तु हृष्टाः सुरसिद्धसंघाः प्रगृह्य बीजानि विचिक्षिपुस्ते। वृन्दान्वितो भूमितले स यत्र विष्णुः सदा तिष्ठति सौख्यहीनः ॥३१॥

कहा–तब प्रसन्न होकर देवतागण और सिद्धगण उन बीजों को लेकर जहां वृन्दा से युक्त सौख्य सम्पत्ति से विहीन विष्णु भगवान् थे वहां पर छींट दिये गये ॥३०॥

श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये जलन्धरवधोनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥



अठारहवां अध्याय

नारद उवाच—क्षिप्तेभ्यस्तत्र बीजेभ्यो वनस्पत्यस्त्रयोऽभवन्। धात्री च मालती चैव तुलसी च नृपोत्तम ॥१॥ धात्र्युद्भवा स्मृता धात्री माभवा मालती स्मृता। गौरीभवा च तुलसी तमःसत्त्वरजोगुणाः ॥२॥ स्त्रीरूपिण्यौ वनस्पत्यो दृष्ट्वा विष्णुस्तदा नृप। उत्तस्थौ सम्भ्रमाद् वृन्दारूपातिशयविभ्रमः ॥३॥ दृष्टाश्च तेन ताः रागात् कामासक्तेन चेतसा॥ तं चापि तुलसी धात्री रागेणैव व्यलोकयत् ॥४॥ यच्च लक्ष्म्या पुरा बीजमीर्ष्ययैव समर्पितम्। तस्मात्तदुद्भवा नारी तस्मिन्नीर्ष्यापराऽभवत् ॥५॥ अतः

नारद जी ने कहा—हे राजन्! वहां बोये हुए उन तीनों बीजों से आंवला, मालती और तुलसी ये तीन वृक्ष उत्पन्न हुए ॥१॥ सरस्वती के दिये बीज से, रजोगुणवाला आंवला, लक्ष्मी द्वारा प्रदत्त बीज से सतोगुणवाली मालती और गौरी के बीज से तमोगुणवाली तुलसी उत्पन्न हुई ॥२॥ स्त्री रूप धारण किए हुए तीन वृक्षों को देखकर वृन्दा के रूप में मोहित विष्णु भ्रम से उठ खड़े हुए ॥३॥ कुछ कामासक्त चित्त से विष्णु भगवान् ने प्रेम से उनकी ओर देखा और तुलसी तथा धात्री ने भी

सा बर्बरीत्याख्यामवापाथ विगर्हिता। धात्रीतुलस्यौ तद्रागात् तस्य च प्रीतिदे सदा ॥६ ॥ ततो विस्मृतदु:खोऽसौ विष्णुस्ताभ्यां सहैव तु। वैकुण्ठमगमद्हृष्टः सर्वदेवन-मस्कृतः ॥७ ॥ कार्त्तिकोद्यापने विष्णोस्तस्मात्पूजा विधीयते। तुलसी मूलदेशे तु प्रीतिदा साऽथ तत्स्मृता ॥८ ॥ तुलसीकाननं राजन् गृहे यस्यावतिष्ठते। तद्गृहं तीर्थरूपं तु नायान्ति यमकिङ्करा: ॥९ ॥ सर्वपापहरं नित्यं कामदं तुलसीवनम्। रोपयन्ति नराः

अनुरागपूर्वक विष्णु भगवान् को देखा और जो बीज पूर्व ही में लक्ष्मी द्वारा ईर्षा से दिया गया था। इसी कारण उसमें ईर्षा करने वाली स्त्री मालती उत्पन्न हुई ॥४॥ लक्ष्मी के बीज से पैदा विष्णु से ईर्षा के कारण मालती बर्बरी इस नाम से प्रसिद्ध हुई और धात्री तथा तुलसी विष्णु में अनुराग रखने से उनके प्रीति का कारण हुई ॥५-६ ॥ विष्णु भगवान् उस दु:ख को भूलकर धात्री तथा तुलसी के साथ प्रसन्न होकर सब देवताओं से नमस्कृत होते हुए अपने वैकुण्ठ धाम को चले गये ॥७ ॥ इसी कारण कार्तिक के उद्यापन में तुलसी की जड़ में विष्णु की पूजा की जाती है। तुलसी का मूल प्रदेश विष्णु भगवान् को प्रसन्न करने वाला है ॥८ ॥ हे राजन्! तुलसी का जंगल जिसके घर में वर्तमान है वह घर तीर्थ स्वरूप है और उस घर में यम के दूत कभी नहीं आते ॥९ ॥ सब पापों का नाश करने

श्रेष्ठास्ते न पश्यन्ति भास्करिम् ॥१०॥ दर्शनं नर्मदायास्तु गङ्गास्नानं तथैव च। तुलसीवनसंसर्गः सममेव त्रयं स्मृतम् ॥११॥ रोपणात्पालनात्सेकाद् दर्शनात्स्पर्श-नान्नृणाम्। तुलसी दहते पापं वाङ्मनःकायसञ्चितम् ॥१२॥ तुलसीमञ्जरीभिर्यः कुर्याद्धरिहरार्चनम्। न स गर्भगृहं याति भुक्तिभागी न संशयः ॥१३॥ पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा। वासुदेवादयो देवास्तिष्ठन्ति तुलसीदले ॥१४॥

वाला अभीष्ट फल को देने वाला जो प्राणी तुलसी का वन लगाते हैं वे यमराज को नहीं देखते हैं ॥१०॥ (सोम से पैदा हुई) भगवती नर्मदा का दर्शन, गंगा स्नान तथा तुलसी के वन का संसर्ग ये तीनों बराबर पुण्यप्रद हैं ॥११॥ तुलसी वृक्ष के लगाने से, जल सींचने से, दर्शन से और तुलसी को छूने से कायिक, वाचिक, मानसिक आदि सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं ॥१२॥ जो प्राणी तुलसी के दल से विष्णु भगवान् और शिव जी का पूजन करते हैं वे गर्भ में पुनः नहीं जाते, निःसन्देह जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥१३॥ तुलसी दल में पुष्करादि समग्र तीर्थ, गंगादि सम्पूर्ण नदियां और विष्णु प्रभृति सब देवता निवास करते हैं ॥१४॥ तुलसी के साथ जो अपना प्राण विसर्जन करता है वह सैंकड़ों पापों से युक्त हो तो भी उसको यमराज नहीं देख सकते ॥१५॥ हे राजन्! जो लोग तुलसी

तुलसीमञ्जरीयुक्तो यस्तु प्राणान् विमुञ्चति। यमोऽति नेक्षितुं शक्तो युक्तः पापशतैरपि ॥१५॥ विष्णोः सायुज्यमाप्नोति सत्यं सत्यं नृपोत्तम। तुलसीकाष्ठजं यस्तु चन्दनं धार्यते नरः ॥१६॥ तद्देहं न स्पृशेत्पापं क्रियमाणमपीह यत्। तुलसीविपिनच्छाया यत्र यत्र भवेन्नृप ॥१७॥ तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यं पितृणां दत्तमक्षयम्। धात्रीच्छायासु यः कुर्यात् पिण्डदानं नृपोत्तम ॥१८॥ मुक्तिं प्रयान्ति पितरस्तस्य ये निरये स्थिताः। मूर्ध्नि पाणौ मुखे चैव देहे च नृपसत्तम ॥१९॥ धत्ते धात्रीफलं यस्तु

के काष्ठ का चन्दन लगाते हैं, विष्णु के साथ उसकी सायुज्य-मुक्ति होती है। उनके द्वारा किये हुए पाप भी उनके शरीर को स्पर्श नहीं करने पाते ॥१६॥ हे राजन्! जहां जहां तुलसी के वन की छाया हो वहां पितरों का श्राद्ध करना चाहिये। उनके निमित्त दिया हुआ वहां का दान सर्वदा के लिये अक्षय होता है ॥१७॥ हे राजन्! आंवला के वृक्षों की छाया में जो प्राणी पिण्डदान करते हैं उनके भीतर यदि नरक की यातना को भी भोगते हों तो वे मुक्त हो जाते हैं ॥१८॥ शिर, हाथ, मुख और देह में जो आंवला के फल को धारण करते हैं उनको विष्णु स्वरूप जानना चाहिए ॥१९॥ आंवला के फल, तुलसी की माला और द्वारिका की मिट्टी जिसके शरीर पर हमेशा लगी रहती है वह

स विज्ञेयो हरिः स्वयम्। धात्रीफलं च तुलसी मृत्तिका द्वारकोद्भवा ॥२०॥ यस्य देहे स्थिता नित्यं जीवन्मुक्तः स उच्यते। धात्रीफलैः समिश्रैश्च तुलसीपत्रमिश्रितैः ॥२१॥ जलैः स्नाति नरस्तस्य गङ्गास्नानफलं स्मृतम्। देवार्चनं नरः कुर्यात् धात्रीपत्रैः फलैस्तदा ॥२२॥ सुवर्णमणिमुक्तौघैरर्चनस्याप्नुयात्फलम्। तीर्थानि मुनयो देवाः यज्ञाः सर्वेऽपि कार्तिके ॥२३॥ नित्यं धात्रीं समाश्रित्य तिष्ठन्त्यर्के तुलास्थिते। द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं तु कार्तिके ॥२४॥ लुनाति स नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितान्।

जीवन्मुक्त है ॥२०॥ आंवला और तुलसी दलों को जल में मिलाकर जो प्राणी स्नान करते हैं उनको गंगाजल का फल होता है ॥२१॥ जो मनुष्य आंवले के पत्ते और फलों से देवता का पूजन करते हैं उनको स्वर्ग, मणि और मोतियों के समूह द्वारा पूजन का फल प्राप्त होता है ॥२२॥ कार्तिक मास में जब सूर्य तुला राशि में रहे सब तीर्थ, ऋषि, देवता और सब यज्ञ तब आंवले के वृक्ष में वास करते हैं ॥२३॥ जो मनुष्य द्वादशी तिथि को तुलसी का दल और कार्तिक में आंवले का पत्ता तोड़ता है वह रौरव नरक में वास करता है ॥२४॥ जो कार्तिक में आंवले की छाया में बैठकर भोजन करता है उसके एक वर्ष के अन्न के संसर्ग से उत्पन्न दोष नष्ट हो जाते हैं। कार्तिक में आंवले की जड़

धात्रीच्छायां समाश्रित्य कार्तिकेऽन्नं भुनक्ति यः ॥२५ ॥ अन्नसंसर्गजं पापमावर्षं तस्य गच्छति। धात्रीमूले तु यो विष्णुं कार्तिके पूजयेन्नरः ॥२६ ॥ विष्णुक्षेत्रेषु सर्वेषु पूजितस्तेन सर्वदा। धात्रीतुलस्योर्माहात्म्यमपि देवश्चतुर्मुखः। न समर्थो भवेद्वक्तुं यथा देवस्य शार्ङ्गिणः ॥२७ ॥ धात्रीतुलस्युद्भवकारणं यः शृणोति यः श्रावयते च भक्त्या। विधूतपाप्मा सह पूर्वजैः स्वैः स्वर्गं व्रजत्यग्र्यविमानसंस्थः ॥२८ ॥

में जो विष्णु का पूजन करता है उसको विष्णु क्षेत्रों के पूजन का फल मिलता है ॥२५-२६ ॥ आंवला तथा तुलसी की महत्ता का वर्णन करने में ब्रह्मा भी असमर्थ हैं, जिस प्रकार विष्णु भगवान् के माहात्म्य का वर्णन कोई नहीं कर सकता ॥२७ ॥ आंवला तथा तुलसी की उत्पत्ति कथा को जो मनुष्य स्वयं सुनता और औरों को सुनाता है वह सब पापों से मुक्त होकर अग्रिम विमान पर चढ़कर अपने पूर्वजों के साथ स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥२८ ॥

श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये धात्रीतुलस्योर्माहात्म्य कथनं नामाष्टादशोऽध्यायः समाप्तः ॥१८ ॥

✪ ✪ ✪

उन्नीसवां अध्याय

पृथुरुवौच—सेतिहासमिदं ब्रह्मन् माहात्म्यं कथितं मम। अत्याश्चर्यकरं सम्यक् तुलस्यास्तच्छ्रुतं मया ॥१ ॥ यदूर्जव्रतिनः पुंसः फलं महदुदाहृतम्। तत्पुनर्ब्रूहि माहात्म्यं केन चोर्णमिदं शुभम् ॥२ ॥

नारद उवाच—आसीत्सह्याद्रिविषये करवीरपुरे पुरा। ब्राह्मणो धर्मवित्कश्चिद्धर्म-दत्तेति विश्रुतः ॥३ ॥ विष्णुव्रतकरः सम्यग्विष्णुपूजारतः सदा। द्वादशाक्षर विद्यायां

राजा पृथु ने कहा—मुनिश्रेष्ठ! कार्तिक का व्रत करने वाले पुरुष के लिये जिस महान् फल की प्राप्ति बतायी गयी है, उसका वर्णन कीजिए। किसने इस व्रत का अनुष्ठान किया था?

नारद जी बोले—हे राजन्! पूर्वकाल की बात है, सह्य पर्वत पर करवीरपुर में धर्मदत्त नाम के एक धर्मज्ञ ब्राह्मण रहते थे, जो भगवान् विष्णु का व्रत करने वाले तथा भली-भान्ति श्री विष्णु-पूजन में सर्वदा तत्पर रहने वाले थे। वे द्वादशाक्षर मन्त्र 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का जप किया करते थे। अतिथियों का सत्कार उन्हें विशेष प्रिय था। एक दिन कार्तिक मास में श्री हरि के समीप

जपनिष्ठोऽतिथिप्रियः ।।४ ।। कदाचित्कार्तिके मासि हरिजागरणाय सः । रात्र्यां तुर्यांशशेषायां जगाम हरिमन्दिरम् ।।५ ।। हरिपूजोपकरणान् प्रगृह्य व्रजता तदा । तेन दृष्टा समायाता राक्षसी भीम-दर्शना ।।६ ।। वक्रदंष्ट्रा ललज्जिह्वा निमग्ना रक्तलोचना । दिगम्बरा शुष्कमांसा लम्बोष्ठी घर्घरस्वना ।।७ ।। तां दृष्ट्वा भयवित्रस्तः कम्पिता-वयवस्तदा । पूजोपकरणैः सर्वैः पयोभिश्चाहनद्भयात् ।।८ ।। संस्मृत्य तद्धरेर्नाम

जागरण करने के लिये वे भगवान् के मन्दिर की ओर चले। उस समय एक पहर रात बाकी थी। भगवान् के पूजन की सामग्री साथ लिये जाते हुए ब्राह्मण ने मार्ग में देखा, एक भयंकर राक्षसी आ रही है। उसकी आवाज़ बड़ी डरावनी थी। टेढ़ी-मेढ़ी दाढ़ें, लपलपाती हुई जीभ, धंसे हुए लाल-लाल नेत्र, नग्न शरीर, लम्बे-लम्बे होंठ और घर्घर शब्द-यह उसका हुलिया था। उसे देखकर ब्राह्मण देवता भय से थर्रा उठे। सारा शरीर कांपने लगा। उन्होंने साहस करके पूजा की सामग्री तथा जल से ही उस राक्षसी के ऊपर रोषपूर्वक प्रहार किया। हरिनाम का स्मरण करके तुलसी दल मिश्रित जल से उसको मारा था, इसलिये उसका सारा पातक नष्ट हो गया। अब उसे अपने पूर्वजन्म के कर्मों के परिणामस्वरूप प्राप्त हुई दुर्दशा का स्मरण हो गया। उसने ब्राह्मण को दण्डवत्

तुलसीयुक्तवारिणा। सोऽहनत्पातकं यस्मात् तस्मात्तस्याः ह्यगाल्लयम् ॥९॥ अथ संस्मृत्य सा पूर्वजन्मकर्मविपाकजम्। त्वां दशामब्रवीद्विप्रं दण्डवच्च प्रणम्य सा ॥१०॥ कलहोवाच—पूर्वकर्मविपाकेन दशामेतां गतास्म्यहम्। तत्कथं तु पुनर्विप्र प्रयास्याम्युत्तमां गतिम् ॥११॥ नारद उवाच—तां दृष्ट्वा प्रणतां सम्यग्वदमानां स्वकर्म तत्। अतीव विस्मितो विप्रस्तदा वचनमब्रवीत् ॥१२॥ धर्मदत्त उवाच—केन कर्मविपाकेन त्वं दशामीदृशीं गता। कुतस्तया का च किंशीला तत्सर्वं कथयस्व मे ॥१३॥

प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'ब्राह्मण! मैं पूर्वजन्म के कर्मों के कुपरिणाम वश इस दशा को पहुंची हूं। अब कैसे मुझे उत्तम गति प्राप्त होगी?' राक्षसी को अपने आगे प्रणाम करते तथा पूर्वजन्म के किये हुए कर्मों का वर्णन करते देख कर ब्राह्मण को बड़ा विस्मय हुआ। वे उससे इस प्रकार बोले—'किस कर्म के फल से तुम इस दशा को पहुंची हो? कहां से आयी हो? तुम्हारा नाम क्या है? तथा तुम्हारा आचार-व्यवहार क्या है? ये सारी बातें मुझे बताओ। कलहा बोली—ब्राह्मण! मेरे पूर्वजन्म की बात है, सौराष्ट्र नगर में भिक्षु नाम के एक ब्राह्मण रहते थे। मैं उन्हीं की पत्नी थी। मेरा नाम कलहा था। मैं बड़े भयंकर स्वभाव की स्त्री थी। मैंने बचपन से भी कभी अपने पति का

कृतोऽनया ॥२३॥ तस्मात्प्रेतशरीरेऽपि तिष्ठत्वेषाऽतिनिन्दिता। अतश्चैषा मरूद्देशे प्रापितव्या भटैरियम् ॥२४॥ तत्र प्रेतशरीरस्था चिरं तिष्ठत्वियं ततः। ऊर्ध्वं योनित्रयं चैषा भुनक्त्यशुभकारिणी ॥२५॥ कलहोवाच—साहं पञ्चशताब्दानि प्रेतदेहे स्थिता किल। क्षुत्तृड्भ्यां पीडिताविश्य शरीरं वणिजां त्वहम् ॥२६॥ आयाता दक्षिणं देशं कृष्णावेण्योश्च सङ्गमम्। तत्तीरं संश्रिता यावत् तावत्तस्याः शरीरतः ॥२७॥

करके रहे। इसके बाद यह पापिनी तीन योनियों का भी कष्ट भोगेगी। कलहा कहती है—विप्रवर! मैं वही पापिनी कलहा हूं, प्रेत के शरीर में आये मुझे पांच सौ वर्ष व्यतीत हो गये। मैं सदा ही अपने कर्म से दुःखित तथा भूख-प्यास से पीड़ित रहा करती हूं। एक दिन भूख से पीड़ित होकर मैंने एक बनिये के शरीर में प्रवेश किया और उसके साथ दक्षिण देश में कृष्णा और वेणी के संगम पर आयी। आने पर ज्यों ही संगम के किनारे खड़ी हुई, त्यों ही उस बनिये के शरीर से भगवान् शिव और विष्णु के पार्षद निकले और उन्होंने मुझे बलपूर्वक दूर भगा दिया। द्विजश्रेष्ठ! तब से मैं भूख का कष्ट सहन करती हुई इधर-उधर घूम रही थी। इतने में ही आपके ऊपर मेरी दृष्टि पड़ी। आपके हाथ से तुलसी मिश्रित जल का संसर्ग पाकर अब मेरे पाप नष्ट हो गये हैं। विप्रवर! मुझ

शिवविष्णुगणैर्दूरमपकृष्टा बलादहम्। ततः क्षुत्क्षामया दृष्टो मया हि त्वं द्विजोत्तम। त्वद्धस्ततुलसीवारीसंसर्ग गत पापया ॥२८॥ तत्कृपां कुरु विप्रेन्द्र कथं मुक्ति-मियाम्यहम्। योनित्रयाद-प्रभवादस्माच्च प्रेतदेहतः ॥२९॥ इत्थं विचिन्त्य कलहावचनं द्विजाग्रणी स्तत्कर्मपाकभवविस्मयदुःखयुक्तः तद्ग्लानिदर्शनकृपाचलचित्त-वृत्तिर्ध्यात्वा चिरं स वचनं निजगाद दुःखात् ॥३०॥

पर कृपा कीजिये और बताइये, मैं इस प्रेत-शरीर से और भविष्य में प्राप्त होने वाली भयंकर तीन योनियों से किस प्रकार मुक्त होऊंगी?

नारद जी कहते हैं-कलहा के ये वचन सुनकर द्विजश्रेष्ठ धर्मदत्त को उसके कर्मों के परिणाम का विचार करके बड़ा विस्मय और दुःख हुआ। उसकी ग्लानि देखकर उनका हृदय करुणा से द्रवित हो उठा। वे बहुत देर तक सोच-विचार कर खेद के साथ कहने लगे ॥३०॥

श्री पद्मपुराणान्तर्गते कार्तिक माहात्म्ये एकोनविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥१९॥

बीसवां अध्याय

धर्मदत्त उवाच—विलयं यान्ति पापानि तीर्थदानव्रतादिभिः। प्रेतदेहे स्थितायास्ते तेषु नैवाधिकारिता ॥१॥ त्वद्ग्लानिदर्शनादस्मात्खिन्नं च मम मानसम्। नैव निर्वृतिमायाति त्वामनादृत्य दुःखिताम् ॥२॥ पातकं च तवात्युग्रं यद्योनित्रयपातकम्। नैवाल्पैः क्षीयते पुण्यैः प्रेतत्वं चातिगर्हितम् ॥३॥ तस्मादाजन्मजनितं यन्मया कार्तिकव्रतम्। तत्पुण्यस्यार्द्धभागेन सद्गतिं त्वमवाप्नुहि ॥४॥ कार्तिकव्रतपुण्येन न साम्यं यान्ति सर्वथा। यज्ञादानानि तीर्थानि व्रतान्यपि यतो ध्रुवम् ॥५॥ नारद उवाच—इत्युक्त्वा

धर्मदत्त ने कहा—तीर्थ, दान और व्रत आदि शुभ साधनों के द्वारा पाप नष्ट होते हैं, किन्तु तुम इस समय प्रेत के शरीर में स्थित हो, अतः उन शुभ कर्मों में तुम्हारा अधिकार नहीं है। तथापि तुम्हारी ग्लानि देखकर मेरे मन में बड़ा दुःख हो रहा है। तुम दुःखिनी हो, तुम्हारा उद्धार किये बिना मेरे चित्त को शान्ति नहीं मिलेगी, अतः मैंने जन्म से लेकर आज तक जो कार्तिक-व्रत का अनुष्ठान किया है, उसका आधा पुण्य लेकर तुम उत्तम गति को प्राप्त होओ। यों कहकर धर्मदत्त

धर्मदत्तोऽसौ यावत्तमभ्यषेचयत्। तुलसीमिश्रिततोयेन श्रावयन्द्वादशाक्षरम् ॥६ ॥ तावत्प्रेतत्वनिर्मुक्ता ज्वलदग्निशिखोपमा। दिब्यरूपधरा जाता लावण्येन यथेन्दिरा ॥७ ॥ ततः सा दण्डवद् भूमौ प्रणनामाथ तं द्विजम्। उवाच सा तदा वाक्यं हर्षगद्गदभाषिणी ॥८ ॥ कलहोवाच—त्वत्प्रसादाद् द्विजश्रेष्ठ विमुक्ता निरयादहम्। पापाब्धौ मज्जमानायास्त्वं नौ भूतोऽसि मे ध्रुवम् ॥९ ॥ नारद उवाच—इत्थं सा वदती विप्र ददर्शायान्तमम्बरात्। विमानं भास्वरं युक्तं विष्णुरूपधरैर्गणैः ॥१० ॥ अथ सा

ने द्वादशाक्षर मन्त्र का श्रवण कराते हुए तुलसी मिश्रित जल से ज्यों ही उसका अभिषेक किया, त्यों ही वह प्रेत-शरीर से मुक्त हो दिव्य रूप धारिणी देवी हो गयी। धधकती हुई आग की ज्वाला के समान तेजस्विनी दिखाई देने लगी। लावण्य से तो वह ऐसी जान पड़ती थी, मानो साक्षात् लक्ष्मी हों। तदनन्तर उसने भूमि पर मस्तक टेककर ब्राह्मण देवता को प्रणाम किया और आनन्द विभोर हो गद्गदवाणी में कहा—'द्विजश्रेष्ठ! आपकी कृपा से मैं नरक से छुटकारा पा गयी। मैं पाप के समुद्र में डूब रही थी, आप मेरे लिये नौका के समान हो गये।' वह इस प्रकार ब्राह्मण देव से वार्तालाप कर ही रही थी कि आकाश से एक तेजस्वी विमान उतरता दिखाई दिया। वह श्री विष्णु के समान

तद्विमानाग्र्यं द्वास्थाभ्यामवरोपितम्। पुण्यशीलसुशीलाभ्यामप्सरोगणसेवितम् ॥११॥ तद्विमानं तदापश्यद्धर्मदत्तः सविस्मयः। पपात दण्डवद्भूमौ दृष्ट्वा तौ विष्णु-रूपिणौ ॥१२॥ पुण्यशीलसुशीलौ च तमुत्थाप्यानतं द्विजम्। समभ्यनन्दतुर्वाक्य-मूचतुर्धर्मसंयुतम् ॥१३॥ गणावूचतुः—साधु साधु द्विजश्रेष्ठ यत्त्वं विष्णुरतः सदा। दीनानुकम्पी सर्वज्ञो विष्णुव्रतपरायणः ॥१४॥ आबालत्वाच्छुभं त्वेतद्यत्त्वया कार्तिकव्रतम्। कृतं तस्यार्द्धदानेन यदस्याः पूर्वसञ्चितम् ॥१५॥ जन्मान्तरशताद्भूतं

रूप धारण करने वाले पार्षदों से युक्त था। पास आने पर विमान के द्वार पर खड़े पुण्यशील और सुशील नामक पार्षदों ने उस देवी को विमान पर चढ़ा लिया। उस समय उस विमान को देखकर धर्मदत्त को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने श्री विष्णु रूपधारी पार्षदों का दर्शन करके उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। ब्राह्मण को प्रणाम करते देख कर पुण्यशील और सुशील ने उन्हें उठाया और उनकी प्रशंसा करते हुए यह धर्म युक्त वचन कहा। दोनों पार्षद बोले—द्विजश्रेष्ठ! तुम्हें धन्यवाद है। क्योंकि तुम सदा भगवान् विष्णु की आराधना में संलग्न रहते हो। हीनों पर दया करने का तुम्हारा स्वभाव है। तुम धर्मात्मा और श्री विष्णु व्रत का अनुष्ठान करने वाले हो। तुमने बचपन से लेकर

पापं तद्विलयं गतम्। स्नानैरेव गतं पापं यदस्याः पूर्वकर्मजम् ॥१६ ॥ हरिजागरणाद्यैश्च विमानमिदमास्थितम्। वैकुण्ठं नीयते साधो नानाभोगयुता त्वियम् ॥१७ ॥ दीपदानभवैः पुण्यैस्तेजसां रूपमास्थिता। तुलसीपूजनाद्यैश्च कार्तिकव्रतकैः शुभैः ॥१८ ॥ विष्णुसान्निध्यगा जाता त्वया दत्तैः कृपानिधे। त्वमप्यस्य भवस्यान्ते भार्याभ्यां सह यास्यसि ॥१९ ॥ वैकुण्ठभवनं विष्णो सान्निध्यं च सरूपताम्। ते धन्याः कृतकृत्यास्ते तेषां च सफलो भवः ॥२० ॥ यैर्भक्त्या-ऽऽराधितो विष्णुः धर्मदत्त त्वया यथा। सम्यगाराधितो विष्णुः किन्न यच्छति देहिनाम् ॥२१ ॥ औत्तानचरणिर्येन ध्रुवत्वे स्थापितः पुरा। यन्नामस्मरणादेव देहिनो यान्ति सद्गतिम् ॥२२ ॥ ग्राहगृहीतो नागेन्द्रो

अब तक जो कल्याणमय कार्तिक का व्रत किया है, उसके आधे का दान करके दूना पुण्य प्राप्त कर लिया है। तुम बड़े दयालु हो, तुम्हारे द्वारा दान किये हुए कार्तिक-व्रत के अंगभूत तुलसी पूजन आदि शुभ कर्मों के फल से यह स्त्री भगवान् विष्णु के समीप जा रही है। तुम भी इस शरीर का अन्त होने पर अपनी दोनों पत्नियों के साथ भगवान् विष्णु के वैकुण्ठ धाम में जाओगे और उन्हीं

**यन्नामस्मरणात्पुरा। विमुक्तः सन्निधिं प्राप्तो जातोऽयं जयसंज्ञकः ॥२३॥ यतस्त्व-
यार्चिता विष्णुस्तत्सान्निध्यं प्रयास्यसि। बहून्यब्दसहस्त्राणि भार्याद्वययुतस्य ते ॥२४॥
ततः पुण्ये क्षये जाते यदा यास्यसि भूतलम्। सूर्यवंशोद्भवो राजा विख्यातस्त्वं
भविष्यसि ॥२५॥ नाम्ना दशरथस्तत्र भार्याद्वययुतः पुनः। तृतीयाऽनया चापि याते
पुण्यार्द्धभागिनी ॥२६॥ तत्रापि तव सान्निध्यं विष्णुर्यास्यति भूतले। आत्मानं तव
पुत्रत्वे प्रकल्प्यामरकार्यकृत् ॥२७॥ ततः जन्मव्रतादस्माद्विष्णुसन्तुष्टिकारकात्। न**

के समान रूप धारण करके सदा उनके समीप निवास करोगे। हे धर्मदत्त! जिन लोगों ने तुम्हारी ही भान्ति श्री विष्णु की भक्तिपूर्वक आराधना की है, वे धन्य और कृतकृत्य हैं तथा संसार में उन्हीं का जन्म लेना सार्थक है। जिन्होंने पूर्वकाल में राजा उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव पर स्थापित किया था, उन श्री विष्णु की यदि भली-भान्ति आराधना की जाये तो वे प्राणियों को क्या नहीं दे डालते। भगवान् के नामों का स्मरण करने मात्र से देहधारी जीव सद्गति को प्राप्त हो जाते हैं। पूर्वकाल में जब गजराज को ग्राह ने पकड़ लिया था, उस समय उसने श्री हरि के नाम का स्मरण से ही संकट से

यज्ञाः न च दानादि न तीर्थान्यधिकानि वै ॥२८ ॥ धन्योऽसि विप्राग्र्य यतस्त्वयैतद्
व्रतं कृतं, तुष्टिकरं जगद्गुरोः। यदर्धभागाप्तफला मुरारेः प्रणीयतेऽस्माभिरियं
सलीकताम् ॥२९ ॥

छुटकारा पाकर भगवान् की समीपता प्राप्त की थी और वही अब भगवान् का 'जय' नाम से प्रसिद्ध पार्षद है। तुमने श्री हरि की आराधना की है, अतः वे तुम्हें अपने समीप अवश्य स्थान देंगे ॥२८ ॥२९ ॥

श्रीपद्मपुराणे कार्तिक माहात्म्ये विंशतितमोऽध्यायः समाप्तः ॥२० ॥



इक्कीसवां अध्याय

नारद उवाच—इत्थं तद्वचनं श्रुत्वा धर्मदत्तः सविस्मयः। प्रणम्य दण्डवद् भूमौ वाक्यमेतदुवाच ह ॥१॥ धर्मदत्त उवाच—आराधयन्ति सर्वेऽपि विष्णुं भक्तार्ति-नाशनम्। यज्ञैर्दानैर्व्रतैस्तीर्थैस्तपोभिश्च यथाविधिः ॥२॥ विष्णुप्रीतिकरं तेषां किञ्चित्सान्निध्यकारकम्। यत्कृत्वा तानि चीर्णानि सर्वाण्यपि भवन्ति हि ॥३॥ गणावूचतुः—साधु पृष्टं त्वया विप्र शृणुष्वैकाग्रमानसः। सेतिहासं पुरावृत्तं कथ्यमानं

नारद जी कहते हैं—इस प्रकार विष्णुपार्षदों के वचन सुनकर धर्मदत्त को बड़ा आश्चर्य हुआ, वे उन्हें साष्टांग प्रणाम करके बोले—'प्रायः सभी लोग भक्तों का कष्ट दूर करने वाले श्री विष्णु की यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थ-सेवन और तपस्याओं के द्वारा विधिपूर्वक आराधना करते हैं, उन समस्त साधनों में कौन सा ऐसा साधन है, जो विष्णु को प्रीतिकारक तथा उनके सामीप्य की प्राप्ति करने वाला है? किस साधन का अनुष्ठान करने से उपर्युक्त सभी साधनों का अनुष्ठान स्वतः हो जाता है? दोनों पार्षदों ने कहा—ब्रह्मन्! तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है, अब एकाग्रचित्त होकर सुनो, हम

मयाऽनघ ॥४॥ कान्तिपुर्यां पुरा चोलश्चक्रवर्ती नृपोऽभवत्। यस्याख्ययैव ते देशाश्चोला इति प्रथां गताः ॥५॥ यस्मिन् शासति भूचक्रं दरिद्रो वापि दुःखितः। पापबुद्धिः सरुग्वापि नैव कश्चिदभून्नरः ॥६॥ यस्याप्यनन्तयज्ञस्य ताम्रपर्ण्या-स्तटावुभौ। सुवर्णयूपैः शोभाढ्यावास्तां चैत्ररथोपमौ ॥७॥ स कदाचिद्ययौ राजा ह्यनन्तशयनं द्विज। यत्रासौ जगतां नाथो योगनिद्रामुपाश्रितः ॥८॥ तत्र श्रीरमणं देवं सम्पूज्य विधिवन्नृपः। मणिमुक्ताफलैर्दिव्यैः स्वर्णयूपैश्च शोभनैः ॥९॥ प्रणम्य

इतिहास सहित प्राचीन वृत्तान्त का वर्णन करते हैं। पहले काञ्चीपुरी में चोल नामक एक चक्रवर्ती राजा हो गये हैं, उनके अधीन जितने देश थे वे भी चोल नाम से ही विख्यात हुए। राजा चोल जब इस भूमण्डल का शासन करते थे, उस समय कोई भी मनुष्य दरिद्र, दुःखी, पाप में मन लगाने वाला अथवा रोगी नहीं था। उन्होंने इतने यज्ञ किये थे, जिनकी कोई गणना नहीं हो सकती। उनके यज्ञों के सुवर्णमय एवं शोभाशाली यूपों से भरे हुए ताम्रपर्णी नदी के दोनों किनारे चैत्ररथ वन के समान सुशोभित होते थे। एक समय की बात है, राजा चोल 'अनन्तशयन' नामक तीर्थ में गये, जहां जगदीश्वर श्री विष्णु योग निद्रा का आश्रय लेकर सो रहे थे। वहां लक्ष्मीरमण भगवान् श्री विष्णु के

दण्डवद् भूमावुपविष्टः स तत्र वै। तावद् ब्राह्मणमायान्तमपश्यद्देवसन्निधौ ॥१०॥ देवार्चनार्थं पाणौ तु तुलस्युदकधारिणम्। स्वपुरीवासिनं तत्र विष्णुदासाह्वयं द्विजम् ॥११॥ स तत्राभ्येत्य विप्रर्षिर्देवदेवमपूजयत्। विष्णुसूक्तेन संस्नाप्य तुलसी-मञ्जरीदलैः ॥१२॥ तुलसीपूजया तस्य रत्नपूजां पुरा कृताम्। आच्छादितां समालोक्य राजा क्रुद्धोऽब्रवीदिदम् ॥१३॥ चोल उवाच—माणिकैः स्वर्गपूजाऽत्र शोभाढ्या या कृता मया। विष्णुदास कथं सेयमाच्छन्ना तुलसीदलैः ॥१४॥ विष्णुभक्तिं न जानासि

वंदनीय विग्रह की राजा ने विधिपूर्वक पूजा की। मणि, मोती तथा सुवर्ण के बने हुए सुन्दर फूलों से पूजन करके उन्होंने भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। प्रणाम करके वे ज्यों ही बैठे, उसी समय उनकी दृष्टि भगवान् के पास आते हुए एक ब्राह्मण पर पड़ी, जो उन्हीं की काञ्ची नगरी के निवासी थे। उनका नाम विष्णु दास था। वे भगवान् की पूजा के लिये अपने हाथ में तुलसी दल और जल लिये हुये थे। निकट आने पर उन ब्रह्मर्षि ने विष्णु सूक्त का पाठ करते हुए देव-देवेश्वर भगवान् को स्नान कराया और तुलसी की मञ्जरी तथा पत्तों से विधिवत् पूजा की। राजा चोल ने जो पहले रत्नों से भगवान् की पूजा की थी, वह सब तुलसी पूजा से ढक गयी। यह देखकर राजा

वराकोऽसि मतो मम। यस्त्वमामतिशोभाढ्यां पूजामाच्छादयस्यहो ॥१५ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा सक्रोधः स द्विजोत्तमः। राज्ञो गौरवमुल्लंघ्य जगाद वचनं तदा ॥१६ ॥ विष्णुदास उवाच–राजन् भक्तिं न जानासि गर्हितोऽसि नृपश्रिया। कियद्विष्णुव्रतं पूर्वं त्वया चीर्णं वदस्व तत् ॥१७ ॥ गणावूचतुः–तद् ब्राह्मणवचः श्रुत्वा प्रहस्य स नृपोत्तमः। विष्णुदासं तदा गर्वादुवाच वचनं द्विजम् ॥१८ ॥ राजोवाच–इत्थं चेद्वदसे विप्र विष्णुभक्त्याऽतिगर्वितः। भक्तिस्ते कियती विष्णोर्दरिद्रस्याधनस्य च ॥१९ ॥

कुपित होकर बोले–'विष्णुदास! मैंने मणियों तथा सुवर्ण से भगवान् की पूजा की थी, वह कितनी शोभा पा रही थी। किन्तु तुमने तुलसी दल चढ़ाकर सब ढक दी। बताओ, ऐसा क्यों किया? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, तुम बड़े मूर्ख हो; भगवान् विष्णु की भक्ति को बिल्कुल नहीं जानते। तभी तो तुम अत्यन्त सुन्दर सजी सजायी पूजा को पत्तों से ढके जा रहे हो। तुम्हारे इस बर्ताव पर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है।' विष्णु दास बोले–राजन्! आपको भक्ति का कुछ भी पता नहीं है, केवल राज लक्ष्मी के कारण आप घमंड कर रहे हैं। बताइये तो, आज से पहले आपने कितने वैष्णव व्रतों का पालन किया है? ॥१८॥ राजा ने कहा–ब्राह्मण! यदि तुम विष्णु भक्ति से अत्यन्त

यज्ञदानादिकं नैव विष्णोस्तुष्टिकरं कृतम्। नापि देवालयं पूर्वं कृतं विप्र त्वया क्वचित् ॥२०॥ ईदृशस्यापि ते गर्व एष तिष्ठति भक्तिजः। तच्छृण्वन्तु वचो मेऽद्य सर्वेऽप्येते द्विजातयः ॥२१॥ साक्षात्कारमहं विष्णोरेष वादो गमिष्यति। पश्यन्तु सर्वेऽपि ततो भक्तिं ज्ञास्यन्ति चाऽऽवयोः ॥२२॥ गणावूचतुः—इत्युक्त्वा च नृपोऽगच्छन्निज-राजगृहं यदा। आरभद्वैष्णवं सत्रं कृत्वाचार्यं तु मुद्गलम् ॥२३॥ ऋषिसङ्घसमाजुष्टं बह्वन्नं बहुदक्षिणम्। यच्च ब्रह्मकृतं पूर्वं गयाक्षेत्रे समृद्धिमत् ॥२४॥ विष्णुदासोऽपि

गर्व में आकर ऐसी बात करते हो तो बताओ, तुम में कितनी भक्ति है? ॥१९॥ तुम तो दरिद्र हो, निर्धन हो। क्योंकि तुमने विष्णु भगवान् की प्रसन्नता के लिये दानादिक कुछ भी नहीं किया और न पहले कहीं विष्णु भगवान् का मन्दिर ही बनवाया है ॥२०॥ तो क्या तुम इस प्रकार भी भक्ति का गर्व कर सकते हो? इस भक्ति से क्या फल होता है? यहां उपस्थित सभी ब्राह्मण मेरे वचनों को सुनें ॥२१॥ आप लोग देखें कि विष्णु भगवान् का साक्षात् दर्शन इसको होता है या मुझे, तब हम दोनों की भक्ति आप जान लेंगे ॥२२॥ गणों ने कहा—ऐसा कहकर वह राजा अपने महल में गया और (अपने पुरोहित) मुद्गल को आचार्य बनाकर विष्णु-यज्ञ प्रारम्भ किया ॥२३॥ जिस यज्ञ में

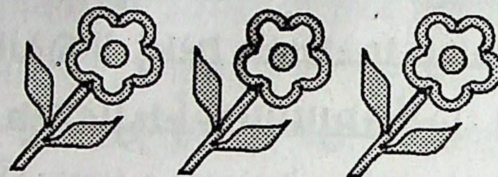
तत्रैव तस्थौ देवालये व्रती। यथोक्तनियमान् कुर्वन् विष्णुस्तुष्टिकरान् सदा ॥२५॥
माघोर्जयोर्व्रतं सम्यक् तुलसीवनपालनम्। एकादश्यां हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षर-
विद्यथा ॥२६॥ उपचारैः षोडशभिर्नृत्यगीतादिमङ्गलैः। नित्यं विष्णोस्तया पूजां
व्रतान्येतानि सोऽकरोत् ॥२७॥ नित्यं संस्मरणं विष्णोर्गच्छन्भुवि स्वपन्नपि।
सर्वभूतस्थितं विष्णुमपश्यत्समदर्शनः ॥२८॥ माघकार्तिकयोर्नित्यं विशेषनियमानपि।

अनेकों ऋषि बुलाये गये थे। बहुत अनाज, बहुत सी दक्षिणा दी गई। जो यज्ञ पहले गयाक्षेत्र में ब्रह्मा द्वारा किया गया था वही यज्ञ यहां भी किया गया ॥२४॥ विष्णु दास जी उसी पूर्व मन्दिर में व्रत करता हुआ विष्णु भगवान् की प्रसन्नता के लिये यथोक्त नियमों को करता हुआ रहने लगा ॥२५॥ माघ तथा कार्तिक मास का व्रत, तुलसी के वन की रक्षा और एकादशी तिथि को विष्णु के द्वादशाक्षर मन्त्र का जप किया ॥२६॥ षोडश उपचार, गीत और नृत्यादि मङ्गल कृत्यों से नित्य प्रति विष्णु भगवान् की पूजा तथा उक्त व्रतादि को किया ॥२७॥ भूमि पर सोते, चलते, सदा विष्णु भगवान् ही को देखता हुआ स्मरण करता हुआ सब प्राणियों में समदृष्टि से विष्णु भगवान् ही को देखता था ॥२८॥ विष्णु के प्रसन्नार्थ सर्वदा माघ तथा कार्तिक व्रत के विशेष नियमों का पालन

अकरोद्विष्णुतुष्ट्यर्थं सोद्यापनविधिं तथा ॥२९ ॥ एवं समाराधयतोः श्रियः पतिं तयोश्च चोलेश्वरविष्णुदासयोः। कालो जगाम बहुलो व्रतस्थयोस्तन्निष्ठसर्वेन्द्रिय-कर्मणोस्तदा ॥३० ॥

और उद्यापन विधि पूर्वक किया करता था ॥२९ ॥ इस प्रकार व्रत में स्थित विष्णु ही में निष्ठापूर्वक कर्म तथा इन्द्रियों से तल्लीन हुए चोलेश्वर और विष्णु दास को आराधना करते हुए बहुत समय बीत गया ॥३० ॥

श्री पद्मपुराणे कार्तिक माहात्म्ये एकविंशतितमोऽध्यायः समाप्तः ॥२१ ॥



बाइसवां अध्याय

गणावूचतुः—कदाचिद्विष्णुदासोऽथ कृत्वा नित्यविधिं द्विजः। सपाकमकरोत्ता-वदहरत्कोऽप्यलक्षितः ॥१॥ तमदृष्ट्वाऽपि सः पाकं पुनर्नैवाकरोत्तदा। सायंकाला-र्चनस्याऽसौ व्रतभङ्गभयाद् द्विजः ॥२॥ द्वितीयेऽह्नि पुनः पाकं कृत्वा यावत्स विष्णवे। उपहारार्पणं कर्तुं तावत्कोऽप्यहरत्पुनः ॥३॥ एवं सप्तदिनं तस्य पाकं कोऽप्यहरन्नृप। ततः सविस्मयश्चायं मनस्येवं विचार्य च ॥४॥ अहो नित्यं समभ्येत्य कः पाकं हरते

गणों ने कहा—नियमों का पालन करता हुआ विष्णुदास किसी समय भोजन बना रहा था कि कोई छिपकर उसका पाक चुरा ले गया ॥१॥ वह उस पाक को वहां न देखकर भी सायंकाल की आराधना न होने तथा व्रत-भंग के डर से फिर भोजन नहीं बना सका ॥२॥ दूसरे दिन फिर भोजन बनाकर विष्णु भगवान् को भोग लगा ही रहा था कि तब तक फिर कोई पाक चुरा कर ले गया ॥३॥ हे नृप! इस प्रकार लगातार सात दिनों तक कोई उसका पाक चुराता रहा। तब विस्मित होकर वह अपने मन में विचारने लगा ॥४॥ यह बड़ी विचित्र घटना है कि न जाने कौन मेरे पाक को नित्यप्रति

मम। क्षेत्रं संन्यासिनः स्थानं न त्याज्यं मम सर्वथा ।।५ ।। पुनः पाकं विधायात्र भुज्यते यदि चेन्मया। सायङ्कालार्चनं चैव परित्याज्यं कथं भवेत् ।।६ ।। यदि पाकं विधायैव भोक्तव्यं तु मया न तत्। अनिवेद्य हरेः सर्वं वैष्णवेन तु भुज्यते ।।७ ।। उपोषितोऽहं सप्ताहं तिष्ठाम्यत्र व्रतस्थितः। अद्य संरक्षणं सम्यक् पाकस्यास्य करोम्यहम् ।।८ ।। इति पाकं विधायासौ तत्रैवालक्षितः स्थितः। तावद्ददर्श चाण्डालं पाकापहरणे स्थितम् ।।९ ।। क्षुत्क्षामं दीनवदनमस्थिचर्मावशेषितम्। तमालोक्य द्विजाग्र्योऽभूत्

चुरा कर ले जाता है! (फिर भी) यह परम संन्यासियों का स्थान है इसे छोड़ना नहीं चाहिये ।।५ ।। यदि मैं फिर भोजन बनाकर भक्षण करता हूं तो सायङ्काल को देर होगी और इस प्रकार से पूजा कैसे छोड़ी जाएगी ।।६ ।। पाक बनाकर तुरन्त मुझे भोजन नहीं करना चाहिये क्योंकि बिना भगवान् को अर्पण किये वैष्णव लोग भोजन नहीं करते ।।७ ।। सात दिन निरन्तर निराहार बीते और मैं व्रत में तत्पर ही हूं, आज भली-भांति इस भोजन की रक्षा करता हूं ।।८ ।। यह सोचकर भोजन बनाकर उसी स्थान पर ओट में छिपकर बैठ गया। उसी समय पक्वान्न को चुराते हुए किसी एक चाण्डाल को देखा ।।९ ।। जिसका शरीर भूख-प्यास से दुर्बल हो रहा था, केवल शरीर में अस्थिपञ्जर ही शेष है।

कृपया खिन्नमानसः ॥१०॥ विलोक्यान्नहरं विप्रस्तिष्ठ तिष्ठेत्यधावत। कथमश्नासि तद्रूक्षं घृतमेतद् गृहाण भो॥११॥ इत्थं वदन्तं विप्राग्र्यमायान्तं स विलोक्य च। वेगादधावत्तद्भीत्या मूर्च्छितश्च पपात ह॥१२॥ भीतं तं मूर्च्छितं दृष्ट्वा चाण्डालं स द्विजाग्रणीः। वेगादभ्येत्य कृपया स्ववस्त्रान्तैरबीजयत्॥१३॥ अथोपस्थितमेवासौ विष्णुदासो व्यलोकयत्। साक्षान्नारायणं देवं शङ्खचक्रगदाधरम्॥१४॥ पीताम्बरं चतुर्बाहुं श्रीवत्साङ्ककिरीटितम्। अतसीपुष्पसङ्काशं कौस्तुभोरस्थलं विभुम्॥१५॥

उस चाण्डाल को देखकर श्रेष्ठ ब्राह्मण का चित्त दया से दुःखित हो गया॥१०॥ अन्न को ले जाते देखकर ठहरो-ठहरो कहकर उसके पीछे दौड़ता हुआ कहने लगा-अरे! यह रूखा भोजन कैसे करोगे? घृत भी ले लो॥११॥ यह कहते हुए श्रेष्ठ ब्राह्मण को अपनी ओर आते देखकर वेग से दौड़ता हुआ वह डर से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा॥१२॥ भय से मूर्च्छित उस चाण्डाल को देखकर वह दयालु ब्राह्मण शीघ्र ही उसके पास आकर अपने वस्त्र से हवा करने लगा॥१३॥ इतने में ही विष्णुदास ने शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, पीताम्बरधारी चतुर्भुजी रूप, अलसी से फूल के समान कान्तिवाले, छाती में कौस्तुभमणि माला से सुशोभित साक्षात् श्रीविष्णु भगवान् को देखा॥१४-

तं दृष्ट्वा सात्त्विकैर्भा वैरावृतो द्विजसत्तमः। स्तोतुं चैव नमस्कर्तुं तदा नालं बभूव सः ॥१६॥ अथ शक्रादयो देवास्तत्रैवाभ्यााययुस्तथा। गन्धर्वाप्सरसश्चापि जगुश्च ननृतुर्मुदा ॥१७॥ विमानशतसंकीर्णं देवर्षिशतसंकुलम्। गीतवादित्रनिर्घोषं स्थानं तदभवत्तदा ॥१८॥ ततो विष्णुः समालिङ्गय स्वभक्तं सात्विकव्रतम्। सारूप्यमात्मनो दत्त्वाऽनयद्वैकुण्ठमन्दिरम् ॥१९॥ विमानवरसंस्थं तं गच्छन्तं विष्णुसन्निधिम्। दीक्षितश्चोलनृपतिर्विष्णुदासं ददर्श सः ॥२०॥ वैकुण्ठभुवनं यान्तं विष्णुदासं

१५॥ भगवान् का दर्शन करके सात्त्विक भाव से युक्त वह श्रेष्ठ ब्राह्मण उनकी स्तुति तथा प्रणाम कुछ भी न कर सका ॥१६॥ वहीं पर सब इन्द्रादि देवतागण भी उपस्थित हो गये और गन्धर्व तथा अप्सराएं आकर प्रसन्न होकर नृत्य गीतादि करने लगे ॥१७॥ वह स्थान सैंकड़ों विमानों से परिपूर्ण, सैंकड़ों देवर्षियों से व्याप्त तथा गायन और वाद्य के कलकल से गुञ्जित हो गया ॥१८॥ तब विष्णु भगवान् ने सात्विक व्रतधारी अपने भक्त विष्णु को छाती से लगाया और अपना रूप देकर अपने साथ वैकुण्ठ धाम को ले गये ॥१९॥ उत्तम विमान पर चढ़कर विष्णु के निकट आते हुए विष्णु दास को यज्ञ में दीक्षित राजा चोल ने देखा ॥२०॥ वैकुण्ठ भवन में जाते हुए विष्णु दास को देख कर

विलोक्य सः। स्वगुरुं मुद्गलं वेगादाहूयेत्थं वचोऽब्रवीत्॥२१॥ चोल उवाच–यत्स्पर्धया मया चैव यज्ञदानादिकं कृतम्। स विष्णुरूपधृग्विप्रो याति वैकुंठ-मन्दिरम्॥२२॥ दीक्षितेन मया सम्यक् सत्रेऽस्मिन्वैष्णवे त्वया। हुतमग्नौ कृता विप्रा दानाद्यैः पूर्णमानसाः॥२३॥ नैवाद्यापि स मे देवः प्रसन्नो जायते ध्रुवम्। विष्णुदासस्य भक्त्यैव साक्षात्कारं ददौ हरिः॥२४॥ तस्माद्दानैर्न यज्ञैश्च नैव विष्णुः प्रसीदति। भक्तिरेव परं तस्य निदानं दर्शने विभोः॥२५॥ इत्युक्त्वा भागिनेयं स्वमभ्यषिञ्चन्

अपने गुरु मुद्गल को शीघ्रता से बुलाकर राजा चोल ने कहा॥२१॥ चोल ने कहा–जिसकी स्पर्धा से मैंने यज्ञ-दानादि किया है वह विष्णु दास ब्राह्मण का रूप धारण कर वैकुण्ठ जा रहा है॥२२॥ मैंने यज्ञ में आपसे दीक्षा लेकर उस वैष्णव यज्ञ को विधिपूर्वक सम्पन्न किया है। अग्नि में हवन तथा ब्राह्मणों को दानादि से सन्तुष्ट किया है॥२३॥ क्या अब तक भी विष्णु भगवान् हमारे ऊपर प्रसन्न नहीं हुए? विष्णुदास की भक्ति से ही विष्णु भगवान् ने विष्णुदास को दर्शन दिया॥२४॥ इससे सिद्ध हुआ कि दानादि तथा यज्ञों के करने से विष्णु भगवान् प्रसन्न नहीं होते। अपितु केवल भक्ति से ही उनका दर्शन होता है॥२५॥ ऐसा कहकर उसने अपने भानजे को राजगद्दी पर बैठाया

नृपासने। आबाल्याद्दीक्षितो यज्ञे ह्यपुत्रत्वमगाद्यतः ॥२६॥ तस्मादद्यापि तद्देशे सदा राज्यांशभागिनः। स्वस्त्रेया एव जायन्ते तत्कृता विधिवर्तिनः ॥२७॥ यज्ञवाटं ततोऽभ्येत्य यज्ञकुण्डाग्रतः स्थितः। त्रिरुच्चैव्याजहारांशु विष्णुं सम्बोधयंस्तदा ॥२८॥ विष्णोर्भक्तिं स्थिरा मह्यं देहि भो कमलापते। यथा भजामि देव त्वां मनोवाक्काय-कर्मभिः॥ इत्युक्त्वा सोऽपतद्वह्नौ सर्वेषामेव पश्यताम् ॥२९॥ मुद्गलस्तु तदा क्रोधाच्छिखामुत्पाटयत्स्वकाम्। तत्स्त्वद्यापि तद्गोत्रे मुद्गला विशिखा बभुः ॥३०॥

क्योंकि लड़कपन से ही यज्ञ में दीक्षित होने के कारण राजा पुत्रहीन था ॥२६॥ इसी कारण आज भी उस देश में राज्य के अधिकारी उसी नियम के अनुसार भानजे ही हुआ करते हैं ॥२७॥ अनन्तर वह यज्ञमण्डप में जाकर यज्ञकुण्ड के अभिमुख खड़ा होकर विष्णु भगवान् को बड़ी शीघ्रता से तीन बार पुकारा ॥२८॥ हे कमलापते! मुझे आज अपनी अचल भक्ति दीजिए जिससे मैं मन, वाणी तथा कर्म से सर्वदा आपका भजन किया करूं। ऐसा कहकर वह राजा लोगों के सम्मुख ही अग्नि में कूद पड़ा ॥२९॥ (यह काण्ड हो जाने पर) मुद्गल ने मारे क्रोध के अपनी शिखा उखाड़ डाली, इसी से उसके गोत्र में आज दिन तक भी उसके गोत्रज शिखा रहित रहते हैं ॥३०॥ इतने ही में

तावदाविर्भवद्विष्णुः कुण्डोऽग्रेभक्तवत्सलः। तमालिङ्ग्य विमानाग्र्यं समारोहय-
दच्युतः ॥३१॥ तमालिङ्ग्यात्मसारूप्ये दत्त्वा वैकुण्ठमंदिरम्। तेनैव सह देवेशो जगाम
त्रिदशैर्वृतः ॥३२॥ यो विष्णुदासः स तु पुण्यशीलो यश्चोलभूपः स सुशीलनामा।
एतावुभौ तत्समरूपभाजौ द्वाःस्थौ कृतौ तेन रमाप्रियेण ॥३३॥

भक्तवत्सल विष्णु भगवान् कुण्ड के सम्मुख प्रकट होकर चोलेश्वर को दर्शन दिये और हृदय से लगाकर विमान पर आगे चढ़ा लिये ॥३१॥ विष्णु भगवान् उसको आलिङ्गन करके उसे अपने समान रूप देकर देवताओं के साथ राजा चोल को लिए हुए वैकुण्ठ को गये ॥३२॥ लक्ष्मी के प्यारे विष्णु भगवान् ने अपने समान रूप वाले विष्णु दास ब्राह्मण को पुण्यशील और राजा चोल को सुशील नाम देकर दोनों को अपना द्वारपाल बनाया। ॥३३॥

श्री पद्मपुराणे कार्तिक माहात्म्ये विष्णुदासचोलोपाख्यानं
नाम द्वाविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥२२॥



तेईसवां अध्याय

धर्मदत्त उवाच–जयश्च विजयश्चैव विष्णोर्द्वास्थौ पुरःस्थितौ। किन्नु ताभ्यां पुरा चीर्णं यस्मात्तद्रूपधारिणौ ॥१॥ गणावूचतुः–तृणबिन्दोस्तु कन्यायां देवहूत्यां पुरा द्विजः। ज्येष्ठो जयः कनिष्ठोऽभूद्विजयश्चैव नामतः। तस्यामेवाभवत्पश्चात् कपिलो योगधर्मवित् ॥२-३॥ जयश्च विजयश्चैव विष्णुभक्तिरतौ सदा। तन्निष्ठेन्द्रियग्रामौ तु धर्मशीलौ बभूवतुः ॥४॥ नित्यमष्टाक्षरीजाप्यौ विष्णुव्रतधरावुभौ।

धर्मदत्त ने कहा–जय और विजय ने पूर्व जन्म में ऐसा कौन-सा पुण्य किया था जिससे विष्णु भगवान् का रूप धारण कर उनके द्वारपाल हुए ॥१॥ गणों ने कहा–प्राचीन काल में तृणबिन्दु की पुत्री देवहूती से कर्दम ऋषि द्वारा (देखने ही से) दो सुन्दर बालक उत्पन्न हुए। उनमें ज्येष्ठ का नाम जय और कनिष्ठ का नाम विजय हुआ। ततः उसी देवहूती के गर्भ से योगशास्त्र में अग्रगण्य कपिलदेवजी हुए ॥२-३॥ जय और विजय दोनों सदा भगवान् की भक्ति में तत्पर, सम्पूर्ण इन्द्रियों के कार्यों को विष्णु भगवान् ही में लगाने वाले और बड़े धर्मात्मा हुए ॥४॥ दोनों नित्यप्रति अष्टाक्षर

साक्षात्कारं ददौ विष्णुस्तयोर्नित्यार्चने सदा ॥५ ॥ राज्ञा कदाचिदाहूतौ तावुभौ यज्ञकर्मणि । जग्मतुर्यज्ञकुशलौ देवर्षिगणपूजितौ ॥६ ॥ जयस्तत्राभवद् ब्रह्मा याजको विजयोऽभवत् । ततो यज्ञविधिं कृत्स्नं परिपूर्णं च चक्रतुः ॥७ ॥ मरुतोऽवभृथस्नातस्ताभ्यां विततं ददौ बहु । तत्समादाय तौ वित्तं जग्मतुः स्वाश्रमं प्रति ॥८ ॥ यजनाय पृथग्विष्णोस्तुष्ट्यर्थं तौ ततो मुनी । तद्धनं विभजन्तौ तु पस्पर्धाते परस्परम् ॥९ ॥ जयोऽब्रवीत्समो भागः क्रियतामिति तत्र सः । विजयश्चाब्रवीन्नैतद्यल्लब्धं येन तस्य

मन्त्र का जप तथा विष्णु का व्रत करने वाले हुए। इन दोनों को सर्वदा पूजा के अवसर पर विष्णु भगवान् दर्शन दिया करते थे ॥५ ॥ किसी समय राजा के बुलाने पर यज्ञकर्म में प्रवीण देवर्षि गणों से पूजित ये दोनो यज्ञ में आये ॥६ ॥ उस यज्ञ में जय ब्रह्मा हुए विजय याचक हुये। यज्ञ की विधिपूर्वक समाप्ति हुई ॥७ ॥ मरुत राजा ने यज्ञान्त स्नान करने के अनन्तर बहुत-सा द्रव्य दिया। यज्ञ दक्षिणा लेकर जय, विजय अपने आश्रम को आये ॥८ ॥ विष्णु भगवान् के पृथक्-पृथक् पूजन और प्रसन्नता के लिये दोनों द्रव्य को बांटने के समय एक-दूसरे से स्पर्धा करने लगे ॥९ ॥ जय ने कहा कि दोनों का सम भाग कीजिये। विजय ने कहा-नहीं, जितना जिसे मिला है, उतना ही

तत् ॥१०॥ ततोऽशपज्जयः क्रोधाद्विजयं क्षुब्धमानसः । गृहीत्वा न ददास्येतत् तस्माद् ग्राहो भवेति तम् ॥११॥ विजयस्त्विति तं शापं गृहीत्वा सोऽशपच्च तम् । मतभ्रान्तो-ऽशपस्त्वं मां तस्मान्मातङ्गतां व्रज ॥१२॥ तत्तदाचख्यतुर्विष्णुं दृष्ट्वा नित्यार्चने विभुम् । शापयोश्च निवृत्तिं तौ ययाचाते रमापतिम् ॥१३॥ जयविजयावूचतुः—भक्तावावां कथं देव ग्राहमातङ्गयोनिगौ । भविष्याव: कृपासिन्धो तच्छापो विनिवर्त्यताम् ॥१४॥ श्रीभगवानुवाच—मद्भक्तयोर्वचोऽसत्यं न कदाचिद्भविष्यति । यमोऽपि नान्यथा

उसका है ॥१०॥ तब क्रोधवश जय ने क्षुब्ध होकर विजय को शाप दिया कि तुम धन लेकर देना नहीं चाहते तो इससे ग्राह हो जाओ ॥११॥ विजय ने उस शाप को अंगीकार कर विजय को शाप दिया कि तुमने प्रमत्त होकर मुझे शाप दिया है—इससे तुम भी हाथी हो जाओ ॥१२॥ तब नित्य पूजा के समय आये हुए विष्णु भगवान् से शाप का वृत्तान्त कहकर दोनों ने भगवान् से शापमोचन का उपाय पूछा ॥१३॥ जय और विजय बोले—हे देव! हम दोनों आप के भक्त हैं, ग्राह और हस्ती की योनि में कैसे होंगे? हे कृपासागर! इस शाप से उद्धार कीजिये ॥१४॥ विष्णु भगवान् ने कहा—मेरे भक्तों की वाणी कभी असत्य न होगी। यमराज भी इसे अन्यथा नहीं कर सकते ॥१५॥ पूर्वकाल

कर्तुं शक्नोति न कदाचन ॥१५॥ प्रह्लादवचसा स्तम्भेऽप्याविर्भूतो ह्यहं पुरा। ततोऽम्बरीषवाक्येन जातोऽहं दशधा किल ॥१६॥ तस्माद्युवामिमौ शापमनुभूय स्वयं कृतौ। लभेतां मत्पदं नित्यमित्युक्त्वाऽन्तर्दधे हरिः ॥१७॥

गणावूचतुः—ततस्तौ ग्रहमातङ्गावभूतां गण्डकीतटे। जातिस्मरौ च तद्योन्यामपि विष्णुव्रते स्थितौ ॥१८॥ कदाचित्स गजः स्नातुं कार्तिक्यां गण्डकीं गतः। तावज्जग्राह तं ग्राहः संस्मरन् शाप-कारणम् ॥१९॥ ग्राहस्तौ ह्यसौ नागः सस्मार श्रीपतिं तदा। तावदाविर्भवद्विष्णुश्शङ्ख-चक्रगदाधरः ॥२०॥ ततस्तौ ग्राहमातङ्गौ चक्रं क्षिप्त्वा

में भक्त प्रह्लाद के कहने से मुझे स्तम्भ से प्रकट होना पड़ा और राजा अम्बरीष के कहने से दश अवतार लेने पड़े ॥१६॥ अतः तुम दोनों अपने किये हुए शापों को भोगकर फिर मेरे लोक को प्राप्त होंगे। ऐसा कहकर विष्णु भगवान् अन्तर्धान हो गये ॥१७॥

गणों ने कहा—तब दोनों गण्डकी नदी के किनारे ग्राह और हाथी हुए। जाति स्मरण रहने के कारण इस योनि में भी विष्णु भगवान् का व्रत नियमपूर्वक किया करते थे ॥१८॥ एक दिन कार्तिक की पूर्णमासी को वह हाथी स्नान कें लिये गण्डकी नदी में गया। तब पूर्व की योनि के शाप का

समुद्धृतौ। दत्त्वैव निजसारूप्यं वैकुण्ठमनयद्विभुः ॥२१॥ ततः प्रभृति तत्स्थानं हरिक्षेत्रमिति स्थितम्। चक्रसंघर्षणाद्यस्मिन् ग्रावाणोऽपि हि लाञ्छिताः ॥२२॥ ताविमौ विश्रुतौ लोके जयश्च विजयस्तथा। नित्यं विष्णुप्रियौ द्वास्थौ पृष्टौ यौ हि त्वया द्विज ॥२३॥ अतस्त्वमपि धर्मज्ञ नित्यं विष्णुव्रते स्थितः। त्यक्तमात्सर्यदम्भो हि भवस्व सम-दर्शनः ॥२४॥ तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नायी सदा भव। एकादशीव्रते निष्ठस्तुलसी-

स्मरण करते हुए ग्राह ने हाथी को पकड़ लिया ॥१९॥ ग्राह के पकड़े हुए गज ने भी विष्णु भगवान् का स्मरण किया। इतने में शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी विष्णु भगवान् वहां प्रकट हो गये ॥२०॥ तब उन दोनों ग्रह और गज का अपने सुदर्शन चक्र द्वारा उद्धार किया और उन दोनों को अपने समान रूप देकर विष्णु भगवान् वैकुण्ठ लोक को ले गये ॥२१॥ उसी दिन से उस स्थान का नाम हरिक्षेत्र प्रसिद्ध हुआ। चक्र के आघात से वहां के पत्थरों में भी चिन्ह बने हुए हैं ॥२२॥ वे ही दोनों जय और विजय नाम से इस लोक में प्रसिद्ध हुए। हे द्विज! विष्णु भगवान् के प्रिय द्वारपालों के विषय में जो आपने प्रश्न किया था उसे मैंने कहा ॥२३॥ इसी कारण हे धर्मज्ञ! तुम भी ईर्षा और द्वेष को छोड़कर नित्य विष्णु का व्रत करो। जगत् के सब जीव मात्र को समदृष्टि से देखो ॥२४॥ तुला,

वनपालकः ॥२५ ॥ ब्राह्मणानथ गाश्चापि वैष्णवांश्च सदा भज। मसूरिकामारनालं वृन्ताकान्यपि वै त्यज ॥२६ ॥ एवं त्वमपि देहान्ते तद्विष्णोः परमं पदम्। प्राप्नोषि धर्मदत्त त्वं तद्भक्त्यैव यथा वयम् ॥२७ ॥ तवाजन्मव्रतादस्माद्विष्णुसन्तुष्टिकारकात्। न यज्ञाः न च दानादि न तीर्थान्यधिकानि वै ॥२८ ॥ धन्योऽसि विप्राग्र्य यतस्त्वयैतद् व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः। यदर्द्धभागाप्तफला मुरारेः प्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम् ॥२९ ॥

मकर और मेष की संक्रान्ति में नित्य प्रातःस्नान तथा एकादशी व्रत, तुलसी वन की रक्षा किया करो ॥२५ ॥ गौ, ब्राह्मण, वैष्णवों की सेवा में तत्पर रहो। व्रत करने वालों को मसूर, काँची, बैंगन के साग सर्वदा त्याज्य हैं ॥२६ ॥ हे धर्मदत्त! इसी भांति तुम भी देह छूटने पर विष्णु भगवान् के परम पवित्र धाम में हम लोगों के समान गति पाओगे ॥२७ ॥ विष्णु के प्रसन्न करने वाले वाल्यकाल से किये गये इस व्रत के समान फल देने वाले तीर्थ, दान तथा यज्ञ एक भी नहीं है ॥२८ ॥ हे विप्र! तुम धन्य हो क्योंकि तुमने जगद्गुरु विष्णु भगवान् को प्रसन्न करने वाला व्रत किया है जिस व्रत का आधा फल प्राप्त करने वाली कलहा को हम लोग वैकुण्ठ लोक को लिये जाते हैं ॥२९ ॥

नारद उवाच—इत्थं तौ धर्मदत्तं तमुपवेश्य विमानगौ। तया कलहया सार्धं वैकुण्ठभवनं गतौ ॥३० ॥ धर्मदत्तो ह्यसौ जातप्रत्ययस्तद्व्रते स्थितः। देहान्ते तद्विभोः स्थानं भार्याभ्यां संयुतोऽभ्यगात् ॥३१ ॥ इतिहासमिमं पुराभवं शृणुते श्रावयते च यः पुमान्। हरिसन्निधिकारिणीं मतिं लभते सत्कृपया जगद्गुरोः ॥३२ ॥

नारद जी ने कहा—इस प्रकार धर्मदत्त को उपदेश देकर उस कलहा को साथ लेकर दोनों विष्णु लोक को गये ॥३० ॥ धर्मदत्त भी इनकी बात का विश्वास करके विष्णु भगवान् के व्रत में तल्लीन हो गया और देहान्त होने पर दोनों स्त्रियों के साथ विष्णुलोक को गये ॥३१ ॥ प्राचीन काल के इस इतिहास को जो सुनता है और सुनाता है वह जगद्गुरु की सत्कृपा से हरि भगवान् के समीप पहुंचा देने वाली बुद्धि पाता है ॥३२ ॥

श्री पद्मपुराणे कार्तिक माहात्म्ये कलहायाः वैकुण्ठप्राप्तिर्नाम त्रयोविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥२३ ॥



चौबीसवां अध्याय

पृथुरुवाच—कृष्णावेण्योस्तटात्तस्माच्छिवविष्णुगणैः पुराः। वणिक्शरीरात्कलहा निरस्ता कथिता त्वया॥१॥ प्रभावोऽयं तयोर्नद्योः किं वा क्षेत्रस्य तस्य वा। तन्मे कथय धर्मज्ञ विस्मयोऽत्र महान्मम॥२॥ नारद उवाच—कृष्णा कृष्णतनुः साक्षाद्वेण्यां देवो महेश्वरः। तत्सङ्गमप्रभावं तु नालं वक्तुं चतुर्मुखः॥३॥ तथापि तत्समुत्पत्तिं कीर्तयिष्यामि तां शृणु। चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वं मनुर्देवः पितामहः॥४॥ सह्याद्रिशिखरे

महाराज पृथु ने कहा—हे नारद! कृष्णा और वेणी नदी के तट पर शिव और विष्णु के गणों ने बनिये के शरीर से कलहा को मुक्त किया यह बात आप पूर्व ही कह चुके हैं॥१॥ हे धर्मज्ञ! यह कार्य इन दोनों नदियों के प्रभाव से या इस क्षेत्र के प्रभाव से हुआ। यह कृपा करके मुझसे कहिए, क्योंकि इस पर मुझे आश्चर्य है॥२॥ नारदजी ने कहा—कृष्णा नाम वाली नदी श्रीकृष्ण का शरीर और वेणी साक्षात् महादेवजी का शरीर है। इनमें सङ्गम का माहात्म्य ब्रह्माजी भी वर्णन नहीं कर सकते॥३॥ तब भी मैं इनकी उत्पत्ति का वर्णन कहूँगा, तुम सावधान मन से सुनो। चाक्षुष मन्वन्तर

रम्ये यजनायोद्यतोऽभवत्। स कृत्वा यज्ञसम्भारान् सर्वदेवगणैः सह ॥५॥ युक्तो हरिहराभ्यां च तद्गिरेः शिखरं ययौ। भृग्वादयो मुनिगणाः मुहूर्ते ब्रह्मदैवते ॥६॥ तस्य दीक्षाविधानाय समाजं चक्रुरादृताः। अथ ज्येष्ठां स्वरां पत्नीमाह्वायां– चक्रुरञ्जसा ॥७॥ सा शनैरराययौ तावद् भृगुर्विष्णुमुवाच ह। भृगुरुवाच–विष्णो स्वरा त्वयाऽऽहूताप्यायाति न कथं त्वरात् ॥८॥ मुहूर्तातिक्रमश्चैव कार्यो दीक्षाविधिः कथम्। विष्णु-रुवाच–न याति चेत्स्वरां शीघ्रं गायत्र्यत्र विधीयताम् ॥९॥ एषापि न भवेत्तस्य भार्या किं पुण्यकर्मणि। नारद उवाच–एवमेव हि रुद्रोऽपि विष्णोर्वाक्यममन्यत ॥१०॥

के आरम्भ में श्रीब्रह्माजी ॥४॥ ने सह्यपर्वत के सुन्दर शिखर पर यज्ञ करने का निश्चय करके सब देवताओं तथा शिव, विष्णुजी के सहित यज्ञ की सामग्री लेकर उस पर्वत के शिखर पर गये। तब भृगु आदि ऋषियों ने आदरपूर्वक ब्रह्म मुहूर्त में उन्हें दीक्षा देने का विचार किया। इसके बाद ब्रह्मा की बड़ी स्त्री स्वरा शीघ्र बुलायी गई ॥५-७॥ वह शनैः-शनैः आ रही थी। इतने में भृगुजी ने विष्णु भगवान् से कहा–हे विष्णो! आप ने स्वरा को शीघ्र बुलाया था सो वह शीघ्रता से क्यों नहीं आई ॥८॥ ब्रह्म मुहूर्त टल जाने पर दीक्षा कृत्य कैसे होगा! तब श्रीकृष्ण जी ने कहा–यदि स्वरा

तच्छ्रुत्वा च भृगोर्वाक्यं गायत्रीं ब्रह्मणस्तदा। निवेश्य दक्षिणे भागे दीक्षाविधिमथाकरोत् ॥११॥ यावद्दीक्षाविधिं तस्य विधेश्चक्रुर्मुनीश्वराः। तावदभ्याययौ तत्र स्वरा यज्ञस्थलं नृप ॥१२॥ ततः सा दीक्षितां दृष्ट्वा गायत्रीं ब्रह्मणा सह। सापत्न्येर्ष्यापरा क्रोधात् स्वरा वचनमब्रवीत् ॥१३॥ स्वरोवाच—अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः। त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥१४॥ येयं च दक्षिणे भागे उपविष्टा मदासने। तस्माल्लोकैस्सदाऽदृश्या गुप्तरूपाऽस्तु निम्नगा ॥१५॥ मदासने

समय पर न आ सकी तो गायत्री को ही स्त्री मानकर दीक्षाविधान कर दीजिये ॥९॥ क्या यह गायत्री पुण्य कर्म में इनकी स्त्री नहीं हो सकती है? नारदजी ने कहा—महादेव जी ने विष्णु भगवान् के वाक्य का समर्थन किया ॥१०॥ यह वचन सुनकर भृगुजी ने गायत्री को ब्रह्माजी के दाहिनी ओर बैठाकर दीक्षाविधान प्रारम्भ किया ॥११॥ ऋषिगण गायत्री को दीक्षा दे ही रहे थे कि उसी समय यज्ञस्थल में स्वरा भी आ पहुंची ॥१२॥ ब्रह्मा के साथ गायत्री को दीक्षित देखकर सपत्नीभाव से ईर्षा करती हुई क्रोध से कहने लगी ॥१३॥ स्वरा ने कहा—जहाँ अपूज्यों की पूजा होती है और पूज्योंकी अप्रतिष्ठा होती है वहां पर अकाल, मृत्यु तथा भय ये तीन निश्चय होंगे ॥१४॥ यह गायत्री

कनिष्ठेयं भवद्भिः सन्निवेशिता। तस्मात्सर्वे जडीभूता नदीरूपा भविष्यथ ॥१६॥ नारद उवाच–ततस्तच्छापमाकर्ण्य गायत्री कम्पिताधरा। समुत्थायाशपद्देवैर्वार्य-माणापि तां स्वराम् ॥१७॥

गायत्र्युवाच–तव भर्ता यथा ब्रह्मा ममाप्येषस्तथा खलु। वृथा शापस्त्वया दत्तो भव त्वमपि निम्नगा ॥१८॥ नारद उवाच–ततो हाहाकृताः सर्वे शिवविष्णुमुखाः सुराः। प्रणम्य दण्डवद् भूमौ स्वरां तत्र विजिज्ञपुः ॥१९॥ देवा ऊचुः–देवि सर्वे वयं

जो ब्रह्माजी के दाहिनी ओर मेरे स्थान पर बैठी है अतः यह अदृश्य (बहने वाली) नदी होगी ॥१५॥ आप लोगों ने अविचार से इसे मेरे स्थान पर बैठाया है अतः आप लोग भी जड़रूप नदी होंगे ॥१६॥ नारदजी ने कहा–इस तरह उसके शाप को सुनकर क्रोध से गायत्री के ओंठ कांपने लगे। और देवताओं के अतिशय रोकने पर भी गायत्री ने उठकर स्वरा को शाप दिया ॥१७॥

गायत्री ने कहा–ब्रह्माजी जैसे तुम्हारे पति हैं वैसे मेरे भी पति हैं। तुमने हमको व्यर्थ शाप दिया है अतः तुम भी नदी हो जाओ ॥१८॥ नारदजी ने कहा–तब तो शिव, विष्णु आदि देवताओं में हाहाकार मच गया और सब कोई स्वरा को दण्डवत् प्रणाम करके प्रार्थना करने लगे ॥१९॥

शप्ताः ब्रह्माद्याः यत्त्वयाऽधुना। यदि सर्वे जडीभूता भविष्यामोऽत्र निम्नगाः ॥२०॥ तदा लोकत्रयं ह्येतद्विनश्यति हि निश्चितम्। अविवेककृतस्तस्माच्छापोऽयं विनिवर्त्यताम् ॥२१॥ स्वरोवाच—नार्चितो हि गणाध्यक्षो यज्ञादौ यत्सुरोत्तमाः। तस्माद्विघ्नं समुत्पन्नं मत्क्रोधजमिदं खलु ॥२२॥ नापि मद्वचनं ह्येतदसत्यं खलु जायते। तस्मात्स्वांशैर्जडीभूता यूयं भवथ निम्नगाः ॥२३॥ आवामपि सपत्न्यौ च स्वांशाभ्यामपि निम्नगे। भविष्यावोऽत्र भो देवाः पश्चिमाभिमुखावहे ॥२४॥ नारद उवाच—

देवताओं ने कहा—हे देवि! जो आपने सम्पूर्ण ब्रह्मादि देवताओं को शाप दिया है यदि हम लोग सब कोई जड़ रूप नदी हो जाएंगे ॥२०॥ तो निश्चय ही तीनों लोक नष्ट हो जाएंगे। अविवेक से यह काम अवश्य हुआ है अतः इससे आप इस शाप को वापिस लीजिये ॥२१॥ स्वरा ने कहा—हे देवतागण! आप लोगों ने यज्ञ के प्रारम्भ में गणेशजी की पूजा नहीं की, इसी से मेरे क्रोध रूप में यह विघ्न उपस्थित हो गया ॥२२॥ मेरा यह वाक्य भी झूठा नहीं हो सकता, इस कारण आप लोग अपने-अपने अंशों से जड़ीभूत होकर नदी रूप में होंगे ॥२३॥ हम दोनों सौत भी अपने-अपने अंशों से पश्चिमवाहिनी नदी होंगी ॥२४॥ नारदजी ने कहा—हे राजन! स्वरा की यह वाणी सुनकर

इति तद्वचनंश्रुत्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। जडीभूता वयं नद्यः स्वांशैः सर्वे तदा नृप ॥२५॥ तत्र विष्णुरभूत्कृष्णा वेण्या देवो महेश्वरः। ब्रह्मा ककुद्मिनी चापी पृथगेवा-भवन्नृप ॥२६॥ देवाः स्वानपि तानंशान् जड़ीकृत्वा विचिक्षिपुः। सह्याद्रिशिखरेऽभ्यस्ते पृथगासंस्तु निम्नगाः ॥२७॥ देवांशैः पूर्ववाहिन्यो बभूवुः पश्चिमावहाः। तत्पत्न्यंशैः पृथक् तत्र शतशोऽथ सहस्त्रशः ॥२८॥ गायत्री च स्वरा चैव पश्चिमाभिमुखे तदा। योगेनाभवतां नद्यौ सावित्रीति प्रथां गते ॥२९॥ ब्रह्मणा स्थापितौ तत्र यज्ञे हरिहरावुभौ।

विष्णु, शिव आदि समस्त देवता अपने-अपने अंशों से नदी रूप में हो गये ॥२५॥ विष्णु भगवान् के अंश से कृष्णा, शिवजी के अंश से वेणी तथा ब्रह्मा के अंश से ककुद्मती नामक नदी हुई ॥२६॥ सब देवताओं ने अपने-अपने अंशों को जोड़कर फैंक दिया उन लोगों का अंश भी सह्य पर्वत के शिखरों से अलग-अलग नदी रूप में होकर बहने लगा ॥२७॥ देवताओं के अंशों से पूर्ववाहिनी तथा उनकी स्त्रियों के अंशों से सैंकड़ों हज़ारों पश्चिमवाहिनी नदियां उत्पन्न हो गईं ॥२८॥ गायत्री और स्वरा दोनों पश्चिमवाहिनी नदी होकर एक साथ बहने लगीं। दोनों का नाम सावित्री पड़ा ॥२९॥ ब्रह्माजी ने उस यज्ञस्थल पर विष्णु भगवान् और शिवजी की स्थापना की, दोनों देवता महावल

महाबलातिबलिनौ नाम्ना देवैः बभूवतुः ॥३० ॥ कृष्णोद्भवं पापहरं पुमान् यः शृणोति यः श्रावयते च भक्त्या। स्यात्तस्य पुंसः सकलं फलं यत् तद्दर्शनस्नानगमोद्भवं स्मृतम् ॥३१ ॥

तथा अतिबल नाम से विख्यात हुए ॥३० ॥ पापविनाशक कृष्णा की उत्पत्ति का वर्णन जो प्राणी सुने या सुनावे उसे कृष्णा-सङ्गम के दर्शन और स्नान का फल प्राप्त होता है ॥३१ ॥

श्री पद्मपुराणे कार्तिक माहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्यायः समाप्तः ॥२४ ॥



पच्चीसवां अध्याय

श्रीकृष्ण उवाच—इति तद्वचनं श्रुत्वा पृथुर्विस्मितमानसः। सम्पूज्य नारदं सम्यग्वि-ससर्ज तदा प्रियम् ॥१ ॥ तस्माद् व्रतत्रयं ह्येतन्ममातीव प्रियङ्करम्। माघकार्तिकयोर्यद्वत् तथैवैकादशीव्रतम् ॥२ ॥ वनस्पतीनां तुलसी मासानां कार्तिकः प्रियः। एकादशी तिथीनां च क्षेत्राणां द्वारिका मम ॥३ ॥ एतेषां सेवनं यस्तु करोति नियतेन्द्रियः। स मे वल्लभतां याति न तथा यजनादिभिः ॥४ ॥ पापेभ्यो न भयं तेन कर्तव्यं नियमादपि। एतेषां सेवनं कान्ते कुर्वतां मत्प्रसादतुः ॥५ ॥ सत्यभामोवाच—विस्मापनीयं तन्नाथ

श्रीकृष्ण जी ने कहा—हे प्रिये! नारद के वचन सुनकर राजा पृथु को बड़ा आश्चर्य हुआ। अनन्तर उन्होंने नारदजी की पूजा कर उन्हें विदा किया ॥१ ॥ इसी कारण माघ, कार्तिक और एकादशी में तीन व्रत हमें अत्यन्त प्रिय हैं ॥२ ॥ वनस्पतियों में तुलसी, महीनों में कार्तिक, तिथियों में एकादशी और क्षेत्रों में द्वारिका धाम हमें बहुत प्रिय हैं ॥३ ॥ जितेन्द्रिय होकर इनका सेवन करता हुआ प्राणी जितना मुझे प्रिय होता है उतना यज्ञादि करने से भी नहीं होता ॥४ ॥ जो प्राणी विधि विधान से इनकी सेवा करते हैं, मेरी अनुकम्पा के कारण उनको पापों का

यत्त्वया कथितं मम। परदत्तेन पुण्येन कलहा मुक्तिमागता ॥६ ॥ इत्थं प्रभावोऽयं मासः कार्तिकस्ते प्रियङ्करः। स्वामिद्रोहादिपापानि स्नानपुण्यैर्गतानि यत् ॥७ ॥ दत्तं चेल्लभ्यते पुण्यं तत्परेण कृतं विभो। अदत्तं केन मार्गेण लभ्यते वा न वेति च ॥८ ॥

श्रीकृष्ण उवाच–अदत्तान्यपि पुण्यानि पापान्यपि तथा नरः। प्राप्यन्ते कर्मणा येन तद्यथावन्निशामय ॥९ ॥ देशग्रामकुलानि स्युर्भागभाञ्जि कृतादिषु। कलौ तु केवलं कर्ता फलभुक् पुण्यपापयोः ॥१० ॥ अकृतेऽपि हि संसर्गे व्यवस्थेयमुदाहृता।

कुछ भी भय नहीं होता ॥५ ॥ (यह सुनकर) सत्यभामा ने कहा–हे नाथ! आपने यह बड़ी आश्चर्यजनक बात कही कि दूसरे के दिये हुए पुण्य से कलहा की मुक्ति हो गई ॥६ ॥ इस प्रकार यह प्रभावशाली कार्तिक मास आपको इतना प्रिय है कि पतिद्रोहादि पाप स्नानमात्र के पुण्य से नष्ट हो गया ॥७ ॥ दूसरों का किया पुण्य देने से प्राप्त होता है और बिना दिया हुआ पुण्य किसी मार्ग से मिलता है या नहीं? ॥८ ॥

तब श्रीकृष्ण जी ने कहा–बिना दिया पुण्य तथा पाप जिस कर्म से मिलता है वह सुनो ॥९ ॥ सत्यादि युग में देश, ग्राम तथा कुलों का दिया हुआ पुण्य अथवा पाप मिलता था किन्तु कलियुग में एकमात्र कर्त्ता को ही पाप तथा पुण्य का फल अवश्य भोगना पड़ता है ॥१० ॥ बिना किसी के

संसर्गात्पुण्यपापानि यथाऽऽयान्ति निबोध तत् ॥११॥ फलार्धं प्राप्नुयान्मर्त्यो यथाव-त्पुण्यपापयोः । अध्यापनाद्याजनाद्वाप्येकपङ्क्त्यशनादपि ॥१२॥ तुर्यांशं पुण्यपापानां परोक्षं लभते नरः । एकासनादेकयानान्निःश्वासस्य गतागतैः ॥१३॥ षडंशफलभागी स्यान्नियतं पुण्यपापयोः । स्पर्शनाद्भक्षणाद्वापि परस्य स्तवनादपि ॥१४॥ दशांश-पुण्यपापानां नित्यं प्राप्नोति मानवः । दर्शनश्रवणाभ्यां च मनोध्यानात्तथैव च ॥१५॥ परस्य पुण्यपापानां शतांशं प्राप्नुयान्नरः । परस्यनिन्दां पैशुन्यं धिक्कारं च करोति

संसर्ग के स्वयं किये हुए कर्मों की ऐसी व्यवस्था कही गयी है। संसर्ग करने से जैसा पाप-पुण्य होता है उसकी व्याख्या भी सुनो ॥११॥ पढ़ाना, यज्ञ कराना, एक साथ भोजन करने से पाप और पुण्य का आधा फल मिलता है ॥१२॥ एक आसन पर बैठने तथा एक सवारी पर चढ़ने से, श्वास के आने-जाने से, पुण्य तथा पाप का चौथा भाग प्राणीमात्र को प्राप्त होता है ॥१३॥ स्पर्श करने, भोजन करने, दूसरे की स्तुति करने से पुण्य और पाप का छठवां भाग मिलता है ॥१४॥ दर्शन करने, सुनने तथा ध्यान करने से, मनुष्य को पुण्य तथा पाप का दसवां अंश मिलता है ॥१५॥ दूसरे की निन्दा, पिशुनता तथा धिक्कार जो करता है उसका शतांश भाग उसको मिलता है ॥१६॥ पुण्य

यः ॥१६॥ तत्कृतं पातकं प्राप्य स्वपुण्यं प्रददाति सः। कुर्वन्तः पुण्यकर्माणि सेवां यः कुरुते नरः ॥१७॥ पत्नीभृतकशिष्येभ्यो यदन्यः कोऽपि मानवः। तस्य सेवानुरूपं च द्रव्यं किञ्चिन्न दीयते ॥१८॥

सोऽपि सेवानुरूपेण तत्पुण्यफलभाग्भवेत्। एकपंक्त्यशनतां यस्तु लङ्घयेत्परिवेषणम् ॥१९॥ तत्पुण्यस्य षडंशं च लभेद्यस्तुविलङ्घितः। स्नानं सन्ध्यादिकं कुर्वन्

करने वाले प्राणियों की जो मनुष्य सेवा करता है, सेव्य सेवक का पाप लेता है और अपना पुण्य देता है। वाल स्त्री, नौकर और शिष्य के सिवाय सेवक तथा किसी और मनुष्य को यदि सेवा के अनुसार द्रव्य नहीं देता तो वह सेवक उसके पुण्य का भागी होता है ॥१७॥ भोजन के लिये एक पंक्ति में बैठकर भोजन करने वालों की परोसी हुई पत्तल को जो मनुष्य लांघता है ॥१८॥

वह उसको अपने किये हुए पुण्य का छठवां भाग देता है। स्नान तथा सन्ध्यादि कर्म करते हुए मनुष्य को जो प्राणी स्पर्श करता अथवा उससे सम्भाषण करता है ॥१९॥ वह मनुष्य सञ्चित पुण्य का छठवां भाग उसे देता है। धर्म के लिये जो मनुष्य दूसरों से धन मांगता है ॥२०॥ उस दान में दान करने वाला सज्जन पुण्य का भागी होता है। जो मनुष्य धर्म के उपदेश से जिससे याचना करता है ॥२१॥ वह उस पुण्य के षष्ठांश को उसे

य: स्पृशेद्वाऽवभाषते ॥२०॥ तत्पुण्यकर्मषष्ठांशं दद्यात्तस्मै विनिश्चितम्। धर्मोद्देशे तु यद् द्रव्यमपरं याचते नरः ॥२१॥ तत्कर्मजं यस्य धनं तं दत्त्वा प्राप्नुयात्फलम्। अपहृत्य परद्रव्यं पुण्यकर्म करोति यः ॥२२॥ कर्मकृत्पापभाक् तत्र निर्धनस्तद्भवं फलम्। नामकृत्य ऋणं यस्तु परस्य म्रियते नरः ॥२३॥ धनी तत्पुण्यमादत्ते तद्धनस्यानु-रूपतः। बुद्धिदाताऽनुमन्ता च यश्चोपकरणप्रदः ॥२४॥ प्रेरकश्चापि षष्ठांशं प्राप्नुयात्पु-ण्यपापयोः। प्रजाभ्यः पुण्यपापानां राजा षष्ठांशमुद्धरेत् ॥२५॥ शिष्याद् गुरुः स्त्रिया

दे देता है। जो दूसरे के द्रव्य को चुराकर धर्म करता है ॥२२॥ उस मनुष्य को चोरी करने के पाप का फल मिलता है तथा उस पाप से निर्धन होता है और जिसका धन है वह पुण्य का भागी होता है। बिना ऋण दिये ही जो मनुष्य मर जाते हैं ॥२३॥ तो वह धनी उस ऋण के समान पुण्य को प्राप्त करता है। शिक्षा अथवा सलाह देने वाला, सामग्री को जुटने वाला और प्रेरणा करने वाला, ये सब पाप और पुण्य के छठे हिस्से को प्राप्त करते हैं ॥२४॥ राजा प्रजाओं के पाप-पुण्य के षष्ठांश का भागी होता है ॥२५॥ गुरु शिष्यों का, पति पत्नी का, पिता पुत्र का, स्त्री पति का किया हुआ पुण्य तथा पाप का छठा भाग पाती है ॥२६॥ पति को प्रसन्न रखने वाले आज्ञाकारिणी स्त्री पति के किये हुए पुण्य का अर्द्ध भाग ले लेती है। जो दूसरों के द्वारा कर्म करता है ॥२७॥

भर्ता पिता पुत्रस्तथैव च। स्वपत्युरपि पुण्यस्य योषिद् धर्ममवाप्नुयात् ॥२६ ॥ चित्तस्यानुव्रता शश्वद्वर्तते तुष्टिकारिणी। परहस्तेन दानादि कुर्वतः पुण्यकर्मणः ॥२७ ॥ विना भृतकपुत्राभ्यां कर्त्ता षष्ठांशमुद्धरेत्। वृत्तिदो वृत्तिसम्भोक्तुः पुण्य षष्ठांशमुद्धरेत् ॥२८ ॥ आत्मनो वा परस्यापि यदि सेवां न कारयेत् ॥२९ ॥ इत्थं ह्यदत्तान्यपि पुण्यपापान्यायान्ति नित्यं परसञ्चितानि। कलौ त्वयं वै नियमो न कार्यः कर्तैव भोक्ता खलु पुण्यपापयोः ॥३० ॥ शृणुष्व चास्मिन्नितिहासमुग्रं पुराभवं पुण्यमतिप्रदं च ॥३१ ॥

वह नौकर तथा अपने बेटे के अतिरिक्त पुण्य करने वाला प्राणी पुण्य का छठा भाग प्राप्त करता है। जीविका देने वाला मनुष्य, जीविका ग्रहण करने वाले के पुण्य के छठे भाग का भागी होता है ॥२८ ॥ यदि अपनी तथा दूसरे की सेवा न करावे ॥२९ ॥ इसी प्रकार दूसरों के किये हुए पुण्य या पाप बिना दिये हुए भी अन्य को मिल सकते हैं, परन्तु यह नियम कलियुग में नहीं है। कलियुग में तो एक मात्र कर्ता ही पुण्य पाप भोगते हैं ॥३० ॥ इस विषय में एक अति प्राचीन और बड़ा उत्तम पवित्र और बुद्धिवर्द्धक इतहिास मैं कहता हूं उसे सुनो ॥३१ ॥

श्री पद्मपुराणे कार्तिक माहात्म्ये पञ्चविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥२५ ॥



छब्बीसवां अध्याय

श्रीकृष्ण उवाच–पुरावन्तीपुरे कश्चिद्विप्र आसीद्धनेश्वरः। ब्रह्मकर्मपरिभ्रष्टः पापकर्मा सुदुर्मतिः ॥१॥ रसकम्बलचर्माद्यैरसौ सत्यानृतादिभिः स्तेयवेश्यासुरापान-युक्तःसन्तप्तमानसः ॥२॥ देशाद्देशान्तरं गच्छन् क्रयविक्रयकारणात्। माहिष्मतीं पुरीमागात् कदाचित्स धनेश्वरः ॥३॥ माहिषेण कृता पूर्वं तस्मान्माहिष्मतीति सा। यस्यां च निम्नगा भाति नर्मदा पापनाशिनी ॥४॥ कार्तिकव्रतिनस्तत्र नानाग्रामादाग-

श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कहा–पहले अवन्ती नामक पुरी में कर्म से रहित पापी, दुरात्मा धनेश्वर नाम का ब्राह्मण रहता था ॥१॥ यह रस, कम्बल, चमड़ा आदि का व्यापारी तथा झूठ-सच बोलने वाला, चोरी, वेश्यासङ्गम, मद्यपान आदि किया करता था। इसी से उसका चित्त दुःखी रहा करता था ॥२॥ क्रय-विक्रय करता हुआ देश-देशान्तर में घूमता हुआ वह एक दिन माहिष्मती पुरी में गया ॥३॥ माहिष नाम के राजा द्वारा बसाये जाने के कारण उस नगरी का नाम माहिष्मती पड़ा था। जिसके पास पापनाशिनी, पुण्यकारिणी भगवती नर्मदा नदी बहती है ॥४॥ उस नदी के किनारे देश-

तान्नरान्। स दृष्ट्वा विक्रयं कुर्वन् मासमेकमुवास सः ॥५ ॥ स नित्यं नर्मदातीरे भ्रमन्विक्रयकारणात्। ददर्श ब्राह्मणान्स्नातान् जपदेवार्चने स्थितान् ॥६ ॥ कांश्चित्पुराणं पठतः कांश्चिच्च श्रवणे रतान्। नृत्यगायनवादित्रविष्णुश्रवणतत्परान् ॥७ ॥ विष्णुमुद्राङ्कितान् कांश्चिन् मालातुलसीधारिणः। ददर्श कौतुकाविष्टस्तत्र तत्र धनेश्वरः ॥८ ॥ नित्यं परिभ्रमंस्तत्र दर्शनस्पर्शभाषणात्। वैष्णवानां यथा विष्णोर्नामसंस्मरणं लभन् ॥९ ॥ एवं मासं स्थितः सोऽथ कार्तिकोद्यापने विधिम्। क्रियामाणं

देशान्तर से आये हुए कार्त्तिक व्रत करने वाले प्राणी कुछ दिन निवास करते थे। यह देखकर दुष्ट धनेश्वर भी क्रय-विक्रय करता हुआ एक मास तक वहां ठहर गया ॥५ ॥ वस्तुओं के बेचने के लिये नर्मदा नदी के तट पर घूमता हुआ वह देवताओं की सेवा-शुश्रूषा, जप-तप में लगे ब्राह्मणों को देखता था ॥६ ॥ कोई पुराण पढ़ रहा है, कोई उसको सुनने में लीन है, कोई नाचने-गाने तथा बजाने में लगा है, कोई विष्णु भगवान् का भजन सुन रहा है ॥७ ॥ कोई विष्णुमुद्रा में स्थित भगवद् भजन नें लीन है और कोई तुलसी की माला पहिने है, उसने जिधर भी देखा उधर ही कौतुक हो रहा था ॥८ ॥ यों ही नित्य घूमते हुए वैष्णवों का दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप और विष्णु भगवान् के

ददर्शासौ भक्त्या जागरणं हरेः ॥१०॥ पौर्णमास्यां ततोऽपश्यद्विप्रगोपूजना-दिकम् ॥११॥ ततश्चास्तमये चैव दीपोत्सवविधिं तदा। क्रियमाणं ददर्शासौ प्रीत्यर्थं त्रिपुरद्विषः ॥१२॥ त्रिपुराणां कृतो दाहो यतस्तस्यां शिवेन तु। अतस्तु क्रियते तस्यां तिथौ भक्तैर्महोत्सवः ॥१३॥ मम रुद्रस्य यः कश्चिदन्तरं परिकल्पयेत्। तस्य पुण्यक्रियाः सर्वा निष्फलाः स्युर्न संशयः ॥१४॥ ततः पूजादिकं पश्यन् बभ्राम स धनेश्वरः। तावत्कृष्णाहिना दंष्ट्रो विह्वलः स पपात ह ॥१५॥ अपश्यन्पतितं लोकाः

नामस्मरण के पुण्य को अर्जित करते हुए एक महीना तक वह इसी प्रकार रहकर कार्तिक व्रत के उद्यापन विधि तथा जागरण को देखता रहा ॥९-१०॥ पूर्णिमा को कार्तिक व्रतियों द्वारा ब्राह्मण तथा गौ की पूजा, दक्षिणा, दान और उनको भोजनादि कराना भी उसने देखा ॥११॥ महादेवजी की प्रसन्नता के लिये सायंकाल में दीपोत्सव देखा ॥१२॥ त्रिपुर नामक दुर्धर्ष दैत्य के तीनों पुरों को महादेवजी ने इसी तिथि में जलाया था, इसी कारण इस तिथि में शिवजी के श्रद्धालु भक्त परम उत्सव मनाते हैं ॥१३॥ जो मनुष्य मुझ में और शंकर जी में अन्तर मानता है उसकी सम्पूर्ण पुण्य क्रिया निःसन्देह निष्फल हो जाती है ॥१४॥ वह धनेश्वर वहां की पूजा विधि देखता हुआ इधर-

परिवव्रुः कृपान्विताः। तुलसीमिश्रितैस्तोयस्तन्मुखं परिमार्जितम् ॥१६॥ अथ देहं परित्यक्तं तं बद्ध्वा यमकिङ्कराः। ताड्यमानाः कशाघातैर्निन्युः संयमनीं रुषा ॥१७॥ चित्रगुप्तस्तु दृष्ट्वा यमायावेदयत्तदा। चित्रगुप्त उवाच—आबालत्वात्तेन पुरा कर्म यद्दुष्कृतं कृतम् ॥१८॥ नैवास्य दृश्यते किञ्चिदाबाल्यात्सुकृतं क्वचित्। दुष्कृतं शक्यते। वक्तुं वर्षेणापि न भास्करे ॥१९॥ पापमूर्तिरयं दुष्टं केवलं दृश्यते विभो। तस्मादाकल्पमर्यादं निरते परिपच्यताम् ॥२०॥ श्रीकृष्ण उवाच—वज्रतुल्यं वचः

उधर घूम रहा था कि उसे काले सांप ने काट लिया, जिससे वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥१५॥ उसकी दशा देखकर वहां के दयालु मनुष्यों ने उसे चारों ओर से घेर लिया और वे उसके मुख पर तुलसीदल मिश्रित पानी के छींटे देने लगे ॥१६॥ जब उसका प्राणान्त हो गया तब यमदूत उसे बांधकर कोड़ों से मारते हुए यमपुरी को ले गये ॥१७॥ उसे देखकर चित्रगुप्त ने यम से कहा कि इसने बाल्यकाल से लेकर आज तक बिल्कुल कुकर्म ही किया है ॥१८॥ इसके जीवन में पुण्य का कहीं लेशमात्र भी दिखाई नहीं देता और इसके पापों की संख्या को मैं एक वर्ष में भी कहने में असमर्थ हूं ॥१९॥ यह साक्षात् पापमूर्ति दिखाई देता है। इसको एक कल्प पर्यन्त घोर

क्रोधाद्यमः प्राह स्वकिङ्करान्। दर्शयन्नात्मनो रूपं तञ्च कालाग्निसन्निभम् ॥२१॥ यम उवाच—भो प्रेतपतयश्चैनं बध्यमानं समुद्गरैः। कुम्भीपाके प्राक्षिपत दुष्टं कल्मषदर्शनम् ॥२२॥ श्रीकृष्ण उवाच—ततो मुद्गरनिर्भिन्नमूर्द्धानं प्रेतपोऽनयत्। कुम्भीपाके च तं क्षिप्त्वा तैलक्वथनशब्दिते ॥२३॥ यावत्क्षिप्तश्च तत्रासौ तावच्छीतलतां ययौ। कुम्भीपाको यथा वह्निः प्रह्लादक्षेपणात् ॥२४॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं प्रेतपी विस्मयान्वितः। तस्मादागत्य तत्सर्वं यमायावेदयत्तदा ॥२५॥ यमस्तु

नरक में रहना चाहिये ॥२०॥ श्रीकृष्णजी ने कहा—कि यह सुनकर यमराज ने अति क्रोधित होकर वज्र के समान कठोर वचन और कालाग्नि की भांति अपना विकराल रूप दिखाते हुए अपने अनुचरों को आज्ञा दी ॥२१॥ यम ने कहा—हे प्रेतसेनापतियो! इस दुष्ट पापमूर्ति पर मुद्गरों का प्रहार करते हुए इसे कुम्भीपाक नरक में धकेल दो ॥२२॥ श्रीकृष्णजी ने कहा—यह सुनते ही प्रेतपति अपने मुद्गर से उसका शिर फोड़ते हुए ले गये और उबलते हुए तेल की कढ़ाई के कुम्भीपाक में उसे गिराया ॥२३॥ ज्योंही धनेश्वर को कुम्भीपाक में गिराया त्योंही भभकती हुई उसकी आग सहसा शिथिल हो गई। जैसे प्रह्लाद को अग्निज्वाला में गिराने से अग्नि ठण्डी हो गई

कौतुकं दृष्ट्वा प्रेतपेन निवेदितम्। आः किमेतदिति प्रोक्त्वा तमानीय व्यचारयत् ॥२६॥ तावदभ्यागतस्तत्र नारदः प्रहसंस्त्वरम्। यामेन पूजितः सम्यक् तं दृष्ट्वा वाक्यमब्रवीत् ॥२७॥ नारद उवाच—नैवायं निरयान् भोक्तुर्महो ह्यरुणनन्दन। यस्मादेतस्य सञ्जातं कर्म यन्निरयापहम् ॥२८॥ यः पुण्यकर्मिणां कुर्याद्दर्शनस्पर्शभाषणम्। ततः षडंशमाप्नोति पुण्यस्य नियतं नरः ॥२९॥ संख्यातीतैस्तु संसर्गं कृतवान्

थी ॥२४॥ इस विचित्र घटना को देखकर प्रेतपतियों ने विस्मित होकर यमराज से सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥२५॥ यमराज भी इस आश्चर्यमय वृत्तान्त को सुनकर, ऐसा क्यों हुआ? कहकर चकित हो गये और धनेश्वर को बुलाकर विचार करने लगे ॥२६॥ उसी समय हँसते हुए नारदजी भी आ पहुंचे। यमराज ने उनका सत्कार और पूजा की, तब उस धनेश्वर ब्राह्मण को देखकर नारदजी ने कहा ॥२७॥ हे अरुणनन्दन यमराज! यह ब्राह्मण नरक भोगने के योग्य नहीं है, क्योंकि अकस्मात अन्त समय में नरक-यातना को नष्ट करने वाले कुछ सुकर्म इससे हो गये हैं ॥२८॥ जो लोग पुण्यवान् प्राणियों के दर्शन, उनसे स्पर्श तथा वार्तालाप करते हैं उन्हें उनके सुकर्मों का छठवां भाग प्राप्त होता है ॥२९॥ एक मेले में कार्तिक व्रत करने वाले अनगिणत मनुष्यों के साथ इस धनेश्वर

वै धनेश्वरः। कार्तिकव्रतिभिर्मासं तेषां पुण्यांशभागयम् ॥३०॥ परिचर्याकरस्तेषां सम्पूर्णव्रतभागयम्। अत ऊर्ध्वं व्रतोद्भूतपुण्यसंख्या न विद्यते ॥३१॥ कार्तिकव्रतिनां पुंसां पातकानि महान्त्यपि। प्रदहत्यात्ममहसा विष्णुः सद्भक्तवत्सलः। स्नातश्च नर्मदातोयैस्तुलसीमिश्रितैस्त्वयम् ॥३२॥ वैष्णवैः स्नापितो विष्णोर्नाम संश्रावयन्मृतः। तस्मान्निर्गतपापोऽयं सद्गतिं प्राप्तुमर्हति। वैष्णवानुग्रही यस्मान्निरये नव पच्यताम् ॥३३॥ आर्द्रशुष्कैर्यथा पापैर्निरये भोगसन्निधिः। प्राप्यते सुकृतैस्तद्वत् स्वर्गस्य

ब्राह्मण ने एक महीना तक उनका साथ किया है। इससे यह उन लोगों के पुण्य भाग का अधिकारी है ॥३०॥ उक्त व्रत करने वालों की इसने सेवा की है, इस कारण यह उनके सम्पूर्ण व्रत के पुण्य का भागी है। इस कार्तिक व्रत के पुण्य-फल की कुछ सीमा नहीं है ॥३१॥ कार्तिक व्रत करने वाले मनुष्यों के बड़े-बड़े दुष्कर्मों को भी भक्तवत्सल भगवान् अपने तेज से भस्म कर देते हैं ॥३२॥ अन्त समय में तुलसीदल से मिले हुए, नर्मदा के जल से विष्णु भगवान् का स्मरण करते हुए वैष्णवों ने इसकी गति अथवा अन्त्येष्टि क्रिया की है, इससे समस्त पापों से रहित हो जाने के कारण यह अच्छी गति पाने का अधिकारी है और जिस प्राणी पर वैष्णवों की दया हो जाती है वह कदापि

सन्निधिस्तदा ॥३४॥ तस्मादनार्द्रपुण्यो हि यक्षयोनिस्थितस्त्वयम्। विलोक्य निरयान् सर्वान् पापभोगप्रदर्शकान् ॥३५॥ श्रीकृष्ण उवाच—इत्युक्त्वा गतवति नारदे ससौरिस्तद्वाक्यश्रवणवि-बुद्धस्तत्सुकर्मा। विप्रं पुनरनयत्स्वकिङ्करेण तान् सर्वान् नरगणान् प्रदर्शयिष्यन् ॥३६॥

नरक नहीं भोग सकता ॥३३॥ यद्यपि इससे पाप-पुण्य शुष्क तथा आर्द्र (अनिच्छापूर्वक किया हुआ पाप शुष्क, इच्छापूर्वक किया हुआ पाप आर्द्र कहलाता है) हो जाते हैं, इसने आज तक कोई पुण्य नहीं किया है, तथापि पुण्यात्माओं के सङ्ग तथा स्पर्श से यह स्वर्ग का अधिकारी हो गया है ॥३४॥ इसी से यह पुण्यात्मा है और इसे यक्ष योनि देकर केवल उस पाप-भोग करने वाले नरक को इसे दिखा दो ॥३५॥ श्रीकृष्णजी ने कहा—जब ऐसा कहकर नारद जी चले गये तब नारदजी के कहने से उसे पुण्यात्मा समझते हुए यमराज ने सम्पूर्ण नरकों को दिखाने के लिये दूतों को नियुक्त किया ॥३६॥

श्री पद्मपुराणे कार्तिक माहात्म्ये धनेश्वरोपाख्याने षड्विंशोऽध्यायः समाप्तः ॥२६॥



सत्ताइसवां अध्याय

श्रीकृष्ण उवाच–ततो धनेश्वरं नीत्वा निरयान्प्रतपोऽब्रवीत्। दर्शयिष्यंस्तु तान् सर्वान् यमानुज्ञाकरस्तदा ॥१ ॥ प्रेत उवाच–पश्येमान्निरयान् घोरान् धनेश्वरमहाभयान्। येषु पापकराः नित्यं पच्यन्ते यमकिङ्करैः ॥२ ॥ तप्तवालुकनामायं निरयो घोरदर्शनः। यस्मिन्नन्ते दग्धदेहाः क्रन्दन्ते पापकारिणः ॥३ ॥ अतिथीन् वैश्वदेवान्ते क्षुत्क्षामानागतांश्च ये। न पूजयन्ति ते ह्यन्ते पच्यन्ते स्वेन कर्मणा ॥४ ॥ गुर्वग्निब्राह्मणान् गोश्च

श्रीकृष्णजी ने कहा–उसके पश्चात् प्रेतपति यमराज की आज्ञा से धनेश्वर को नरकों के पास ले जाकर और उनको दिखलाता हुआ कहने लगा ॥१ ॥ प्रेतपति ने कहा–हे धनेश्वर! अत्यन्त भयानक और कराल इन नरकों को देखो, जिनमें पापीगणों को यम के दूत नित्य ही दुःख दिया करते हैं ॥२ ॥ यह तप्तवालु नामक भयंकर नरक है, जिसमें देह जल जाने के कारण पापी विलाप कर रहे हैं ॥३ ॥ बलिवैश्वदेव करने के पश्चात् (भोजन के समय) जो प्राणी भूखे अभ्यागतों को भोजन नहीं देते वे मरने पर इनमें अपने कर्त्तव्यों द्वारा बारम्बार सताये जाते हैं ॥४ ॥ जो प्राणी गुरु,

वेदान् मूर्द्धाभिषिक्तान्। ताडयन्ति पदा ये वै ते निर्दग्धाङ्घ्रयस्त्विमे ॥५ ॥ षडभेदस्त्वेष निरयो नानापापैः प्रपद्यते। तथैवान्धकमिश्रोऽयं द्वितीयो निरयो महान् ॥६ ॥ पश्य सूचीमुखैर्देहा भिद्यन्ते पापकारिणाम्। कृमिभिर्घोरवक्त्रैश्च तमोतक्यादिभिर्द्विज ॥७ ॥ असावपि स्थितः षोढा श्वगृध्रपक्षिभिस्तथा। परमर्मभिदा मर्त्याः पच्यन्ते तेषु पापिनः ॥८ ॥ तृतीयः क्रकचो ह्येष निरयो घोरदर्शनः। यत्रेमे क्रकचैमर्त्याः पच्यन्ते पापकारिणः ॥९ ॥ असिपत्रवनाद्यैस्तु षट्प्रकारोऽप्ययं स्थितः। पत्नीपुत्रादिभिर्ये वै

अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वेद, राजा इनको लात मारते हैं, उनके भी पैर इस गर्म बालू में जलाये जाते हैं ॥५ ॥ ये छः प्रकार के नरक अतिशय पापों के करने से मिलते हैं। देखो, यह दूसरा अन्धकमिश्र नामक नरक है ॥६ ॥ हे ब्राह्मण! सूई की तरह मुख वाले तमोतकी नामक कीड़े इन पापियों को काटते हैं ॥७ ॥ यह भी श्वान, गीध आदि पक्षियों के भेद से छः प्रकार का है। इनमें दूसरों के चित्त को दुःखित करने वाले पापीजन गिराये जाते हैं ॥८ ॥ यह इधर तीसरा क्रकच नामक भयानक नरक है। इसमें आरे से पापी लोग चीरे जाते हैं ॥९ ॥ यह भी असिपत्र वन आदि भेदों से छः प्रकार का है। इसमें स्त्री तथा पुत्रादिकों को वियोग करा देने वाले पापी पकाये जाते हैं ॥१० ॥ अपने प्रियजनों

वियोगं प्रापयन्ति हि ॥१० ॥ इष्टैरन्यैरपि नरान् पच्यन्ते त इमे नराः । असिपत्रैश्छिद्यमाना वृकभीत्या पलायिताः ॥११ ॥ पच्यन्ते पापिनः पश्य क्रन्दमाना इतस्ततः । अर्गलाख्यो महा-रौद्रश्चतुर्थो निरयो ह्ययम् ॥१२ ॥ पश्य नानाविधैः पाशैराबध्य यमकिङ्करैः । असावपि च षड्भेदो वधभेदादिभिः स्थितः ॥१३ ॥ कूटशाल्मलिनामानं निरयं पश्य पञ्चमम् । यत्राङ्गारनिभा ह्येताः शाल्मल्यो लोमसन्निभाः ॥१४ ॥ यत्र षोढा विपच्यन्ते यातनाभिरिमे जनाः । परदारपरद्रोह-परद्रव्यरताश्च ये ॥१५ ॥ रक्तपूयमिमं पश्य षष्ठं

से विछोह कराने वाले प्राणी भी असिपत्र रूपी तलवार की धार से काटे जाते हैं और कुछ भेड़ियों के डर से भाग जाते हैं ॥११ ॥ देखो, यह अर्गल नाम का महाभयानक चौथा नरक है, इसमें पापी लोग इधर-उधर चिल्लाते हुए भाग रहे हैं ॥१२ ॥ इधर अनेक प्रकार की फांसियों से यमदूत पापियों को बांधते हैं। वह भी वध इत्यादि भेदों से छः प्रकार का है ॥१३ ॥ और भी देखो, यह कूटशाल्मलि नामक पांचवा नरक है, जिसमें सेमर के लोम अंगारों की भांति कष्ट वाले बड़े-बड़े कांटे हैं ॥१४ ॥ यह भी यातना इत्यादि भेदों से छः प्रकार का है। परस्त्री, किसी के विरोध तथा परद्रव्य की चोरी में लगे हुए पापी इसमें पकाये जाते हैं ॥१५ ॥ देखो, यह उल्बण नामक छठा नरक

निरयमुल्बणम्। अधोमुखा विपच्यन्ते यत्र पापकृतो नराः ॥१६॥ अभक्ष्यभक्षका निन्दापैशन्याभिरता इमे। भज्यमाना विध्यमानाः क्रन्दन्ते भैरवान् रवान् ॥१७॥ षट्प्रकारो विगन्धाद्यैरसावपि हि संस्थितः। कुम्भीपाकः सप्तमोऽयं निरयो घोरदर्शनः ॥१८॥ षोढा तैलादिभिर्द्रव्यैर्धनेश्वर विलोकय। महापातकिनो यत्र क्वथ्यन्ते यमकिङ्करैः ॥१९॥ बहून्यब्दसहस्राणि भुञ्जते यमयातनाम्। चत्वारिंशन् मितानेतान् द्व्यधिकान् पश्य रौरवान् ॥२०॥ अकामात्पातकं शुष्कं कामादार्द्रमुदाहृतम्। आर्द्र

है, जिसमें नीचे सिर कर दुरात्मा पापी लोग पकाये जाते हैं और नीचे की ओर रक्त, पीप भरा हुआ रहता है ॥१६॥ भक्ष्याभक्ष्य के विचारहीन, निन्दा, चुगली करने वाले प्राणियों को मारा जाता है, जिसकी भयानक पीड़ा से ये चिल्ला रहे हैं ॥१७॥ दुर्गन्धादि भेद से यह भी छः प्रकार का है और सातवां कुम्भीपाक नरक है जिसका दर्शन बहुत ही भयानक है ॥१८॥ हे धनेश्वर! देखो! तैलादि द्रव्यों से यह भी छः प्रकार का है, इसमें महापातकी लोगों को यमदूत-गण पकाते हैं ॥१९॥ इसमें हज़ारों वर्ष पर्यन्त यातना भोगनी पड़ती है। ये ही बयालीस रौरव नरक हैं जिनको तुम ने देखा है ॥२०॥ इच्छारहित जो पाप किये जाते हैं, वे सूखे और इच्छापूर्वक जो पाप किये जातें वे पाप

शुष्कादिभिः पापैर्द्विप्रकारानविस्थतान् ॥२१ ॥ चतुरशीतिसंख्याकैः पृथग्भेदानवस्थितान् । अप्रकीर्णं तु पाङ्क्तेयं मलनीकरणं तथा ॥२२ ॥ जातिभ्रंशकरं तद्वदुपपातकसंज्ञकम् । अतिपापं महापापं सप्तधा पातकं स्मृतम् ॥२३ ॥ एभिः सप्तसु पच्यन्ते निरयेषु यथाक्रमम् । कार्तिकव्रतिभिः पुम्भिः संसर्गो ह्यभवत्तव ॥२४ ॥ तत्पुण्योपचयात्तत्र निर्हृता निरयाः खलु । श्रीकृष्ण उवाच—दर्शयित्वेति निरयान् प्रेतपस्तमथाहरत् ॥२५ ॥ धनेश्वरं यक्षलोकं यक्षेशोऽभूत्स तत्र हि । धनदस्यानुगः सोऽयं धनयक्ष

आर्द्र कहे जाते हैं, इस प्रकार शुष्क तथा आर्द्र भेदों से पाप दो प्रकार के होते हैं ॥२१ ॥ इनके और भी पृथक्-पृथक् चौरासी (८४) प्रकार के पाप हैं, अप्रकीर्ण १, पाङ्क्तेय २, मलिनीकरण ३, जातिभ्रंशकरण ४, उपपाप ५, अतिपाप ६, महापाप ७, ये सात तरह के पातक हैं ॥२२–२३ ॥ जो जीव जैसा कर्म करता है, वह इन सातों नरकों में अपने पाप कर्म से पकाया जाता है। तुम्हारा कार्तिक व्रत करने वाले लोगों के साथ बड़ा संसर्ग था ॥२४ ॥ उस पुण्य के प्रभाव से तुम्हारी नरक यातना दूर हो गई। श्रीकृष्णजी ने कहा—इस प्रकार प्रेतपति धनेश्वर को सब भांति के नरक दिखाकर उसे ले गया ॥२५ ॥ यक्षलोक में उसे ले जाकर वहां का राजा बना दिया, वहां धनेश्वर धनयक्ष नाम

इति स्मृतः ॥२६ ॥ यदाख्यया ऽकरोत्तीर्थमयोध्यायां तु गाधिजः ॥२७ ॥ एवंप्रभावः खलु कार्तिकोऽयं भुक्तिप्रदो मुक्तिकरश्च यस्मात्। यो हन्त्यनेकार्जितपातकानि कर्तुश्च सन्दर्शनतोऽपि मुक्तिम् ॥२८ ॥

से विख्यात हुआ और कुबेर जी का सेवक बन गया ॥२६ ॥ जिसके नाम से विश्वामित्र ने अयोध्यापुरी में एक तीर्थ बनाया है और ऐसे माहात्म्य वाला यह कार्तिक मास है और संसार में भक्ति-मुक्ति आदि सब कुछ देने में समर्थ है। जो इस कार्तिक मास का व्रत करता है तथा करने वाले का दर्शन करता है उसे अवश्य मुक्ति मिलती है ॥२७-२८ ॥

इति श्रीपद्म पुराणे कार्तिक माहात्म्ये श्री कृष्णसत्यासंवादे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७ ॥



अट्ठाइसवां अध्याय

सूत उवाच—इत्युक्त्वा वासुदेवोऽसौ सत्यभामामति प्रियाम्। सायं सन्ध्याविधिं कर्तुं जगाम च निजं गृहम् ॥१॥ एवंप्रभावः प्रोक्तोऽयं कार्तिकः पापनाशनः। विष्णुप्रियकरोऽत्यन्तं भुक्ति-मुक्तिफलप्रदः ॥२॥ हरिजागरणं प्रातःस्नानं तुलसिसेवनम्। उद्यापनं दीपदानं व्रतान्येतानि कार्तिके ॥३॥ पञ्चकैर्व्रतकैरेभिः सम्पूर्णं कार्तिकव्रतम्। फलमाप्नोति तत्प्रोक्तं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥४॥ ऋषय ऊचुः— विष्णुप्रियाऽतिफलदः प्रोक्तोऽयं रोमहर्षणः। कार्तिकप्रभवः सम्यक् सेतिहासं च

सूत जी ने कहा—इस कथा को श्रवण कर श्रीकृष्ण जी अपनी अत्यन्त प्यारी सत्यभामा को लेकर स्वयं सन्ध्या करने के लिए राज भवन में गये ॥१॥ ऐसे माहात्म्य से युक्त सम्पूर्ण पापविनाशक विष्णु, भगवान् को अतिशय प्रिय तथा भुक्ति-मुक्ति प्रदान करने वाला कार्तिक मास कहा गया है ॥२॥ (१) हरि-जागरण, (२) प्रातःकाल में स्नान, (३) तुलसी महारानी, (४) अन्त में उद्यापन तथा कार्तिक में नित्य प्रति दीपदान ये कार्तिक मास के व्रत के आवश्यक कार्य हैं ॥३॥ इन

विस्मितः ॥५ ॥ अवश्यं च तथा कार्यः पापदुःखनिवृत्तये। मोक्षार्थिभिर्नरैः सम्यग्भोगकामस्तथापि वा ॥६ ॥ एवं स्थितो यदा कश्चित् व्रतस्थः सङ्कटे स्थितः। दुर्गारण्य-स्थितो वापि व्याधिभिः परिपीडितः ॥७ ॥ कथं तेन प्रकर्तव्यं कार्तिकव्रतं शुभम्। यस्मादत्यन्त-फलदमत्याज्यं सर्वदा नरैः ॥८ ॥ सूत उवाच-एवमापद्‌गतो यस्तु नरो नित्यं दृढव्रतः। विष्णो शिवस्य वा कुर्यादालये हरिजागरम् ॥९ ॥

पांचों व्रतों को जो प्राणी पूरे कार्तिक मास भर करता है वह भुक्ति तथा मुक्ति दोनों फलों को प्राप्त करता है ॥४ ॥ ऋषिगणों ने कहा-विष्णु भगवान् का प्रिय, अधिक फल को देने वाला, शरीर के रोम-रोम को प्रसन्न करने वाला, इतिहासपूर्वक कार्तिक मास का विचित्र माहात्म्य आपने कहा ॥५ ॥ मोक्ष की चाह करने वाला अथवा भोग के इच्छुक प्राणियों को अपने दुःख-विनाश के लिये कार्तिक मास का व्रत अवश्य करना चाहिये ॥६ ॥ ऋषिगणों ने कहा-जैसा आपने कहा कि यदि कार्तिक-व्रती किसी संकट में फंस गया या किसी भयानक स्थान अथवा जंगल में रहे या रोग हो जाये तो कार्तिक का व्रत किस प्रकार करे ॥७ ॥ क्योंकि अतिशय फल देने वाले इस व्रत को किसी प्रकार भी नहीं छोड़ना चाहिये ॥८ ॥ सूत जी ने उत्तर दिया-विपत्ति पड़ जाने पर भी धीरता के साथ

शिवविष्णुगृहाभावे सर्वदेवालयेष्वपि। दुर्गाटव्यां स्थितो वाऽथ यदि वाऽऽपद्गतो भवेत् ॥१०॥ कुर्याद्वटाश्वत्थमूले तुलसीनां वनेष्वपि। विष्णुनामप्रबन्धानां गायनं विष्णुसन्निधौ ॥११॥ गोसहस्त्रप्रदाने यत्फलमाप्नोति मानवः। वाद्यकृत्पुरुषश्चापि वा वाजपेयफलं लभेत् ॥१२॥ सर्वतीर्थावगाहोत्थं नर्त्तकः फलमाप्नुयात्। आपद्गतो यदाप्यम्भो न लभेत्कुत्रचिन्नरः ॥१३॥ व्याधितो वा यथा कुर्याद्विष्णोर्नाम्नापि मार्जनम्। उद्यापनविधिं कर्तुमशक्तो यो व्रतस्थितः ॥१४॥ ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद् व्रत-

शिव तथा विष्णु भगवान् के मन्दिर में जागरण अवश्य करे ॥९॥ इन मन्दिरों के न होने पर किसी भी देवता का मन्दिर हो उसमें जागरण करे। गहन जंगल में अथवा किसी प्रकार की विपत्ति आ जाने पर ॥१०॥ पीपल के वृक्ष के नीचे अथवा तुलसी के वन में जागरण करें। विष्णु भगवान् के पास विष्णु के निमित्त कीर्तन करें ॥११॥ इस प्रकार हज़ार गोदान के बराबर फल मिलता है और उस कीर्तन में वाद्ययंत्र (बाजा) बजाने वाले को वाजपेय यज्ञ के बराबर फल होता है ॥१२॥ और नाचने वाला प्राणी समस्त तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त करता है। किसी एक आपदा में पड़ जाने से अथवा रोगी हो जाने से ॥१३॥ यदि कदाचित् जल भी न मिल सके तो केवल विष्णु

सम्पूर्णहेतवे। अशक्तौ दीपदानाय परदीपं प्रबोधयेत् ॥१५॥ तस्य वा रक्षणं कुर्याद्वातादिभ्यः प्रयत्नतः। अभावे तुलसीनां च पूजयेद्वैष्णवं द्विजम् ॥१६॥ तस्मात्सन्निहितो विष्णुः स्वभक्तेष्वेव सर्वदा। सर्वाभावे व्रती कुर्याद् ब्राह्मणानां गवामपि ॥१७॥ सेवा ह्यश्वत्थवटयोर्व्रतसम्पूर्णहेतवे। ऋषय ऊचुः—कथं त्वयाऽश्वत्थवटौ ब्राह्मणेन समौ स्मृतौ ॥१८॥

भगवान् के नाम मात्र से मार्जन ही कर ले। यदि उद्यापन की विधि न कर सके ॥१४॥ तो व्रत की पूर्ति के लिये ब्राह्मणों को भोजन मात्र करा देवे, क्योंकि अलक्षित रूप विष्णु भगवान् के लक्षित स्वरूप ब्राह्मण ही हैं। इनकी प्रसन्नता से विष्णु भगवान् निःसन्देह सदा प्रसन्न रहते हैं ॥१५॥ यदि दीपदान भी न कर सके तो दूसरे के दिये हुए दीपक की वायु आदि से खूब सावधानी के साथ रक्षा करें और तुलसी महारानी के अभाव में वैष्णव ब्राह्मण का पूजन करें ॥१६॥ क्योंकि विष्णु भगवान् सर्वदा भक्तों के समीप ही रहते हैं। इन सब के न होने पर व्रती ब्राह्मण, गौ, पीपल और वट के वृक्ष की श्रद्धा से सेवा करे। शौनकादि ऋषियों ने कहा—आपने गौ तथा ब्राह्मणों के सदृश पीपल और वट वृक्ष पूज्य क्यों माने गये हैं ॥१७-१८॥

सर्वेभ्यस्तु तरुभ्यस्तौ कस्मात्पूज्यतरौ स्मृतौ। सूत उवाच–अश्वत्थरूपी भगवान् विष्णुरेव न संशयः ॥१९॥ रुद्ररूपी वटस्तद्वत् पलाशो ब्रह्मरूपधृक्। दर्शनं पूजनं सेवा तेषामघहरा स्मृता ॥२०॥ ऋषय ऊचुः–कस्माद् वृक्षत्वमापन्ना ब्रह्मविष्णु-महेश्वराः। एतत्कथय धर्मज्ञ संशयोऽत्र ममाहि नः ॥२१॥ सूत उवाच–पार्वती-शिवयोर्देवाः सुरतं कुर्वतोः किल। अग्निर्ब्राह्मणरूपेण गतश्च विघ्नकृत्पुरा ॥२२॥ ततश्च पार्वती क्रुद्धा शशाप त्रिदिवौकसः। रतोत्सवसुखभ्रंशात् कम्पमाना रुषा

सूत जी ने कहा–पीपल का वृक्ष साक्षात् विष्णु भगवान् है, बरगद का वृक्ष साक्षात् शिव और पलाश का वृक्ष साक्षात् ब्रह्मा हैं। इनके पूजन, सेवा तथा दर्शन से सब पापों का नाश होता है ॥१९-२०॥ ऋषिगण कहने लगे कि हे धर्मज्ञ! हम लोगों को इसमें शंका है कि ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव जी वृक्ष रूप क्यों हुए? आप कृपा करके कहिये ॥२१॥ सूत जी ने कहा कि प्राचीन काल में किसी समय श्री शिव जी और पार्वती जी किसी एकान्त स्थान में रमणक्रीडा कर रहे थे इसी समय उनके विषय भोग में विघ्न करने के लिए ब्राह्मण का स्वरूप धारण कर अग्नि देव वहां पर गये ॥२२॥ भोग विलास के आनन्द का नाश हो जाने के कारण क्रोध से कांपती हुई पार्वती ने समस्त देवताओं

तदा ॥२३॥ पार्वत्युवाच—कृमिकीटादयोऽप्येते जानन्ति सुरते सुखम्। तद्विघ्नकारिणो देवा ह्युद्भिदत्वमवाप्स्यथ ॥२४॥ सूत उवाच—एवं सा पार्वती देवान् शशाप क्रुद्धमानसा। तस्माद् वृक्षत्वमापन्नाः सर्वे देवगणाः किल ॥२५॥ तस्मादिमौ विष्णु-महेश्वरावुभौ बभूवतुर्बोधिवटौ मुनीश्वराः। बोधिस्त्वं गादार्किदिनं विनैव संस्पृश्यतामर्कजविष्णुयोगात् ॥२६॥

को शाप दिया ॥२३॥ पार्वती जी ने कहा, हे देवताओ! विषय सुख को कीट-पतंगादि भी जानते हैं। उसमें आप लोगों ने देवता होकर विघ्न किया है। इसलिये आप सब लोग वृक्ष हो जावें ॥२४॥ सूत जी ने कहा—इस प्रकार क्रोधित पार्वती जी के शाप देने से सब देवता वृक्ष हो गये ॥२५॥ इसी कारण विष्णु भगवान् तथा शिव जी दोनों पीपल और वट हो गये। विष्णु को शनिदेव के साथ योग होने के कारण शनिवार के ही दिन पीपल के वृक्ष का स्पर्श करना चाहिये और किसी दिन नहीं ॥२६॥

इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिक माहात्म्ये अष्टाविंशतितमोऽध्यायः समाप्तः ॥२८॥



उनत्तीसवां अध्याय

ऋषय ऊचुः—अस्पृश्यत्वं कथं यातः सूत बोधितरुस्त्वयम्। स्पृश्यत्वं हि कथं यातस्तथाऽयं शनिवासरे ॥१ ॥ सूत उवाच—समुद्रमथनाद्यानि रत्नान्यापुः सुरोत्तमाः। श्रियं च कौस्तुभं तेषां विष्णवे प्रददुः सुराः ॥२ ॥ यावदङ्गीचकारासौ लक्ष्मी भार्यार्थमात्मनः। तावद्विज्ञापयामास लक्ष्मीस्तं चक्रपाणिनम् ॥३ ॥ लक्ष्मीरुवाच—असंस्कृत्य कथं ज्येष्ठां कनिष्ठा परिणीयते। तस्मान्ममाग्रजामेतामलक्ष्मीं मधुसूदन ॥४ ॥ विवाह्य नय मां पश्चादेष धर्मः सनातनः। सूत उवाच—इति तद्वचनं श्रुत्वा

ऋषिगणों ने सूत जी से कहा—हे सूत जी! पीपल के वृक्ष का स्पर्श अन्य दिनों में क्यों नहीं किया जाता? शनिवार को ही क्यों स्पर्श किया जाता है? ॥१ ॥ सूत जी ने कहा—समुद्र के मंथन करने से जो रत्न देवताओं को प्राप्त हुए उनमें से देवताओं ने लक्ष्मी तथा कौस्तुभ मणि विष्णु भगवान् को समर्पण किये ॥२ ॥ लक्ष्मी को जब विष्णु भगवान् अपनी भार्या बनाने के लिये तत्पर हुए तब विष्णु भगवान् से लक्ष्मी जी ने निवेदन किया ॥३ ॥ लक्ष्मी ने कहा—मेरी बड़ी बहिन

स विष्णुर्लोकभावनः ॥५ ॥ उद्दालकाय मुनये स दीर्घतपसे तदा । आत्मवाक्यानुरोधेन तामलक्ष्मीं ददौ किल ॥६ ॥ स्थूलास्यां शुभ्रदशनां जरठां बिभ्रतीं तनुम् । विततां रक्तनयनां रूक्षगात्रशिरोरुहाम् ॥७ ॥ स मुनिर्विष्णुवाक्यात्तमङ्गीकृत्य स्वमाश्रमम् । वेदध्वनिसमायुक्तामानयामास धर्मवित् ॥८ ॥ होमधूमसुनग्धाढ्यं वेदघोषनिनादितम् । आश्रमं तं समालोक्य व्यथिता साऽब्रवीदिदम् ॥९ ॥ ज्येष्ठोवाच—वेदध्वनिर्भवेद्य-

अलक्ष्मी का विवाह हुए बिना आप मुझ छोटी बहिन से विवाह कैसे कर सकते हैं : अतः आप पहले मेरी बड़ी बहिन का विवाह कर लें, अनन्तर मेरा विवाह कीजिये, क्योंकि यही प्राचीन नियम है। सूत ने कहा—लक्ष्मी की ऐसी वाणी सुनकर भगवान् ने लक्ष्मी की बड़ी बहिन अलक्ष्मी का विवाह आग्रहपूर्वक उद्दालक ऋषि के साथ कर दिया ॥४–६ ॥ वह अलक्ष्मी बड़े मुख, उज्ज्वल दांत, वृद्ध के समान शरीर, बड़े-बड़े लाल-लाल नेत्र तथा रूखे बालों वाली थी ॥७ ॥ उद्दालक मुनि भी उसे विष्णु भगवान् के आग्रह से स्वीकार कर वेदध्वनि से गुंजित अपने आश्रम में ले आये ॥८ ॥ हवन के पवित्र धुएं से सुगन्धित, वेदध्वनि से मुखरित उस मनोहर आश्रम को देखकर वह अत्यन्त दुःखित होकर बोली ॥९ ॥ ज्येष्ठा ने कहा—इस आश्रम में वेदध्वनि हो रही है, इस कारण यह

स्मिन्नतिथीनां च पूजनम्। न चागमिष्ये भो ब्रह्मन्नयस्वान्यत्र मां ध्रुवम् ॥१०॥ उद्दालक उवाच–कथं नायासि कान्ते वै वर्ततेऽलं मतं तव। तव योग्या च वसतिः का भवेच्च वदस्व तत् ॥११॥ ज्येष्ठा उवाच–वेदनिर्भवेद्यस्मिन्नतिथीनां च पूजनम्। यज्ञदानादिकं वापि नैव तत्र वसाम्यहम् ॥१२॥ परस्परानुरागेण दाम्पत्यं यत्र वर्तते। पितृदेवार्चनं यत्र तत्र नैव वसाम्यहम् ॥१३॥ उद्यमी नीतिकुशलो धर्मयुक्तः प्रियंवदः। गुरुपूजारतो यत्र तस्मिन्नैव वसाम्यहम् ॥१४॥ दिवा रात्रौ गृहे यस्मिन् दम्पत्योः कलहो भवेत्।

आश्रम मेरे रहने के योग्य नहीं है। अतः मुझे किसी दूसरे स्थान पर ले चलो ॥१०॥ उसकी बात सुनकर उद्दालक मुनि ने कहा–हे कान्ते! तुम इसमें किस लिए नहीं रह सकती और तुम्हारे रहने के योग्य स्थान कौन है उसे मुझ से कहो ॥११॥ ज्येष्ठा ने कहा–जहां पर वेदध्वनि, अतिथियों का सत्कार तथा यज्ञादिक हों, वहां मैं निवास नहीं कर सकती हूं ॥१२॥ जहां पति-पत्नी में अति अनुराग है और पितर तथा देवताओं के निमित्त यज्ञ और पूजन हुआ करता है वहां मैं नहीं रह सकती ॥१३॥ जहां उद्यमी, नीतिकुशली, प्रियवादी, धर्मात्मा लोग बड़ों की पूजा में लीन रहते हैं वहां मैं नहीं रह सकती ॥१४॥ जहां दिन-रात स्त्री-पुरुषों में लड़ाई होती है और जिस स्थान से

निराशा यान्त्यतिथयस्तनिस्मन्स्थाने रतिर्मम ॥१५ ॥ वृद्धसज्जनमित्राणां यत्र स्यादवमाननम्। निष्ठुरं भाषणं यत्र तत्र नित्यं वसाम्यहम्। दुराचाररता यत्र परद्रव्यापहारिणः ॥१६ ॥ परदाररताश्चापि तस्मिन्स्थाने रतिर्मम। गोवधो मद्यपानं च यत्र सञ्जायतेऽनिशम् ॥१७ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि तस्मिन्स्थाने रतिर्मम। सूत उवाच—इति तद्वचनं श्रुत्वा विषण्णवदनोऽभवत् ॥१८ ॥ उद्दालकः पुनर्ज्येष्ठावाक्यं श्रुत्वा न वोचिवान्। उद्दालकस्ततो वाक्यं तामलक्ष्मीमुवाच ह ॥१९ ॥ उद्दालक उवाच—

अतिथि लोग निराश होकर लौट जाते हैं ॥१५ ॥ जहां पूज्य, वृद्धों, सत्पुरुषों और मित्रों का अनादर हुआ करता है और जहां अति कठोर वाणी बोली जाती है, दुराचारी तथा दूसरों के धन को चुराने वाले ॥१६ ॥ परस्त्रीगामी प्राणी जहां रहते हैं, जहां नित्यशः गौओं का वध, मद्यपान ॥१७ ॥ ब्रह्महत्यादिक पाप होते रहते हैं वहां मैं प्रसन्नतापूर्वक रह सकती हूं। सूत जी ने कहा—इस प्रकार उसकी वाणी सुनकर उद्दालक मुनि का मुख मलिन हो गया ॥१८ ॥ ज्येष्ठा के कहे हुए वाक्य को सुनकर मुनि चुप रह गये। कुछ देर के बाद फिर भी उस अलक्ष्मी से उद्दालक जी कहने लगे कि अच्छा ऐसा स्थान तुम्हारे लिये खोज करूंगा। उद्दालक जी ने कहा—मैं जब तक तुम्हारे रहने के

अश्वत्थवृक्षमूलेऽस्मिन्नलक्ष्मीस्त्वं स्थिरा भव। आवासस्थानमालोक्य यावच्चायाम्यहं पुनः ॥२०॥ सूत उवाच–इति तां तत्र संस्थाप्य जगामोद्दालकस्तदा। प्रतीक्ष्यापि चिरं तत्र यदा तं न ददर्श ह॥२१॥ तदा रुरोद करुणं भर्तृत्यागेन दुःखिता। तत्तस्याः रुदितं सा श्रीर्वैकुण्ठभवनेऽश्रृणोत्॥२२॥ तदा विज्ञापयामास विष्णुमुद्विग्नमानसा। लक्ष्मीरुवाच–सा च ममाग्रजा ज्येष्ठा भर्तृत्यागेन दुःखिता॥२३॥ तामाश्वासयितुं याहि कृपया यद्यहं प्रिया। लक्ष्म्या सह ततो विष्णुस्तत्रागच्छत् कृपानिधिः॥२४॥

योग्य स्थान ढूंढ कर न आऊं तब तक तुम इसी पीपल के वृक्ष के नीचे स्थिर होकर बैठी रहो॥१९-२०॥ सूत जी ने कहा कि उद्दालक उसको वहां बैठाकर स्थान ढूंढने चले गये। बहुत काल तक उनकी प्रतीक्षा करने पर भी जब वे नहीं दिखाई पड़े॥२१॥ तब पति के परित्याग करने से दुःखित होकर वह दरिद्रा रोने लगी। उसके करुण रोदन को लक्ष्मी जी ने बैकुण्ठ में सुना॥२२॥ और विष्णु भगवान् से व्याकुल मन होकर कहने लगीं। लक्ष्मी ने कहा–हे नाथ! हमारी बड़ी बहन दरिद्रा पति के त्याग देने के कारण बहुत दुःखी हो गई है॥२३॥ हे कृपालु! यदि मैं आपकी प्रिय-पत्नी हूं तो उसको आश्वासन देने के लिये आप जाइये। इस प्रार्थना को सुनकर कृपासिन्धु विष्णु भगवान्

आश्वासयन्नलक्ष्मीं तामिदं वचनब्रवीत्। विष्णुरुवाच–अश्वत्थमूलमाश्रित्य सदाऽलक्ष्मि स्थिरा भव ॥२५ ॥ ममांशसम्भवोऽश्वत्थ आवासस्तु मया कृतः। प्रत्यब्दं येऽर्चयिष्यन्ति त्वां ज्येष्ठां गृहधर्मिणः ॥२६ ॥ ते श्रीगुणैः प्रयुक्ताश्च सदा तिष्ठन्ति निश्चितम्। अङ्गनाभिः सदा पूज्या बलिभिर्विविधैस्तदा ॥२७ ॥ पुष्पधूपाग्निभिश्चैव तेषां लक्ष्मीः प्रसीदति। कृष्णसत्योश्च संवादं नारदस्य पृथोस्तथा ॥२८ ॥ अन्यत्किं प्रष्टुकामाः स्थ वदामि च सुविस्तरम्। इति तद्वचनाद्देवा ऋषयः सम्मितास्तदा ॥२९ ॥

लक्ष्मी के साथ वहां गये ॥२४॥ उस दरिद्रा को ज्ञान देते हुए विष्णु भगवान् कहने लगे। विष्णु जी ने कहा–हे अलक्ष्मी! इसी पीपल की जड़ में तुम सर्वदा के लिये स्थिर होकर निवास करो ॥२५॥ क्योंकि मेरे ही अंश से इसकी उत्पत्ति हुई है और इसमें मेरा निवास रहता है। प्रतिवर्ष गृहस्थ प्राणी तुम्हारा पूजन करेंगे ॥२६॥ उन्हीं के घर में तुम्हारी छोटी बहिन लक्ष्मी स्थिर रहेगी और विविध प्रकार के उपहारों से स्त्रियों को अवश्यमेव पूजन करना चाहिये ॥२७॥ प्राणिमात्र को चाहिये कि पुष्प, धूप, गन्धादिकों से तुम्हारी पूजा करें तभी उन प्राणियों के प्रति लक्ष्मी जी सदा प्रसन्न रहेंगी। सूत जी ने कहा–श्रीकृष्ण, सत्यभामा का तथा पृथु और नारद का संवाद तुम लोगों को मैंने सुना

नोचुः परस्परं किञ्चित्तूष्णीमेवावतस्थिरे। जग्मुश्च बदरीं द्रष्टुं सर्वे वै शान्त-मानसाः ॥३०॥ य इदं शृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा नरोत्तमान्। सर्वपापैः प्रमुच्येत विष्णु-सायुज्यमाप्नुयात् ॥३१॥

दिया ॥२८॥ अब तुम्हें क्या सुनने की इच्छा है उसे मैं विस्तारपूर्वक कहूंगा। सूत जी की वाणी सुनकर शौनकादिक ऋषि कुछ हंसने लगे ॥२९॥ आपस में कुछ भी न कहकर चित्र की भान्ति अवाक् होकर बैठे रह गये, फिर सावधान होकर सब के सब बदरीनारायण के दर्शन करने के लिये चले ॥३०॥ जो प्राणी इस कार्तिक माहात्म्य को सुनाता अथवा स्वयं सुनता है वह सब पापों से मुक्त होकर विष्णु की सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है ॥३१॥

इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिक माहात्म्ये एकोनत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥२९॥



तीसवां अध्याय

कार्तिक मास का महत्त्व और उसमें पालन करने योग्य नियम

सत्यभागा ने कहा–प्रभो! कार्तिक मास सब मासों से श्रेष्ठ माना गया है। मैंने उसके माहात्म्य को विस्तारपूर्वक नहीं सुना। कृपया उसी का वर्णन कीजिए।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले–सत्यभामे! तुमने बड़ी उत्तम बात पूछी है। पूर्वकाल में महात्मा सूतने शौनक मुनि से आदरपूर्वक कार्तिक–व्रत का वर्णन किया था। वही प्रसंग मैं तुम्हें सुनाता हूं।

सूत जी ने कहा–मुनिश्रेष्ठ शौनक जी! पूर्वकाल में कार्तिकेय जी के पूछने पर महादेव जी ने जिसका वर्णन किया था, उसको आप श्रवण कीजिए।

कार्तिकेय जी बोले–पिता जी! आप वक्ताओं में श्रेष्ठ हैं। मुझे कार्तिक मास के स्नान की विधि बताइए, जिससे मनुष्य दुःख रूपी समुद्र से पार हो जाते हैं। साथ ही तीर्थ के जल का माहात्म्य और माघ स्नान का फल भी बताइए।

महादेव जी ने कहा–एक ओर सम्पूर्ण तीर्थ, समस्त दान, दक्षिणाओं सहित यज्ञ, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, हिमालय, अक्रूरतीर्थ, काशी और शूकर क्षेत्र में निवास तथा दूसरी ओर केवल कार्तिक

मास हो, तो वही मास भगवान् केशव को सर्वदा प्रिय है। जिसके हाथ, पैर, वाणी और मन वश में हों तथा जिसमें विद्या, तप और कीर्ति विद्यमान हों, वही तीर्थ के पूर्ण फल को प्राप्त करता है। श्रद्धा रहित, नास्तिक, संशयालु और कोरी तर्कबुद्धि का सहारा लेने वाले मनुष्य तीर्थ सेवन के फलभागी नहीं होते। जो ब्राह्मण सवेरे उठ कर सदा प्रातः स्नान करता है, वह सब पापों से मुक्त हो परमात्मा को प्राप्त होता है। हे षडानन! स्नान का महत्त्व जानने वाले पुरुषों ने चार प्रकार के स्नान बतलाए हैं–वायव्य, वारुण, ब्राह्म और दिव्य।

यह सुनकर सत्यभामा बोली–प्रभो! मुझे चारों स्नानों के लक्षण बताइए।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा–प्रिये! गोधूलि द्वारा किया हुआ स्नान वायव्य कहलाता है, सागर आदि जलाशयों में किये हुए स्नान को वारुण कहते हैं, **'आपो हिष्ठा मयो'** आदि ब्राह्मण–मन्त्रों के उच्चारणपूर्वक जो मार्जन किया जाता है, उसका नाम ब्राह्म है तथा बरसते हुए मेघ के जल और सूर्य की किरणों से शरीर की शुद्धि करना दिव्य स्नान माना गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करें। परन्तु शूद्र और स्त्रियों के लिए बिना मन्त्र के ही स्नान का विधान है। बालक, युवा, वृद्ध, पुरुष, स्त्री और नपुंसक–सब लोग कार्तिक और माघ मास में प्रातः स्नान की प्रशंसा करते हैं। कार्तिक में प्रातःकाल करने वाले लोग मनोवांछित फल प्राप्त करते हैं।

कार्तिकेय जी बोले–पिता जी! अन्य धर्मों का भी वर्णन कीजिए, जिनका अनुष्ठान करने से मनुष्य अपने समस्त पाप धोकर देवता बन जाता है।

महादेव जी ने कहा–बेटा! कार्तिक मास को उपस्थित देख जो मनुष्य दूसरे का अन्न त्याग देता है, वह प्रतिदिन कृच्छ्रव्रत का फल प्राप्त करता है। कार्तिक में तेल, मधु, कांसे के बर्तन में भोजन और मैथुन का विशेष रूप से परित्याग करना चाहिए। एक बार भी मांस भक्षण करे वह मनुष्य राक्षस की योनियों में जन्म पाता है और साठ हज़ार वर्षों तक विष्ठा में डालकर सड़ाया जाता है। उससे छुटकारा पाने पर वह पापी विष्ठा खाने वाला ग्राम–शूकर होता है। कार्तिक मास में शास्त्र विहित भोजन का नियम करने पर अवश्य ही मोक्ष प्राप्त होता है। भगवान् विष्णु का परमधाम ही मोक्ष है। कार्तिक के समान कोई मास नहीं है, श्रीकृष्ण से बढ़कर कोई देवता नहीं है, वेद के तुल्य कोई शास्त्र नहीं है, गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं है, सत्य के समान सदाचार, सत्ययुग के समान युग, रसना के तुल्य तृप्ति का साधन, दान के सदृश सुख, धर्म के समान मित्र और नेत्र के समान कोई ज्योति नहीं है।

स्नान करने वाले पुरुषों के लिए समुद्रगामिनी पवित्र नदी प्रायः दुर्लभ होती है। कुल के अनुरूप उत्तम शीलवाली कन्या, कुलीन और शीलवान् सम्पत्ति, जन्मदायिनी माता, विशेषतः

पिता, साधु पुरुषों के सम्मान का अवसर, धार्मिक पुत्र, द्वारका का निवास, भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन, गोमती का स्नान और कार्तिक का व्रत–ये सब मनुष्य के लिए प्रायः दुर्लभ हैं। चन्द्रमा और सूर्य ग्रहण काल में ब्राह्मणों को पृथ्वी दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह कार्तिक में भूमि पर शयन करने वाले पुरुष को स्वतः प्राप्त हो जाता है। ब्राह्मण–दम्पत्ति को भोजन कराये, चन्दन आदि से उनकी पूजा करे। कम्बल, नाना प्रकार के रत्न और वस्त्र दान करे। ओढ़ने के साथ ही बिछौना भी दे। तुम्हें कार्तिक मास में जूते और छाते का भी दान करना चाहिए। कार्तिक मास में जो मनुष्य प्रतिदिन पत्तल में भोजन करता है, वह चौदह इन्द्रों की आयुपर्यन्त कभी दुर्गति में नहीं पड़ता। उसे सम्पूर्ण कामनाओं तथा समस्त तीर्थों का फल प्राप्त होता है। पलाश के पत्ते पर भोजन करने से मनुष्य कभी नरक नहीं देखता, किन्तु वह पलाश के बिचले पत्र का अवश्य त्याग कर दे।

कार्तिक मास में तिल का दान, नदी का स्नान, सदा साधु–पुरुषों का सेवन और पलाश के पत्तों में भोजन सदा मोक्ष देने वाले हैं। कार्तिक के महीने में मौन–व्रत का पालन, पलाश के पत्ते में भोजन, तिलमिश्रित भोजन से स्नान, निरन्तर क्षमा का आश्रय और पृथ्वी शयन करने वाला पुरुष युग–युग के उपार्जित पापों का नाश कर डालता है। जो कार्तिक मास में भगवान् विष्णु के सामने

उषाकाल तक जागरण करता है, उसे सहस्र गोदानों का फल मिलता है। पितृ–पक्ष में अन्नदान करने से तथा ज्येष्ठ और आषाढ़ मास में जल देने से मनुष्यों को जो फल मिलता है, वह कार्तिक में दूसरों का दीपक जलाने मात्र से प्राप्त हो जाता है। जो बुद्धिमान कार्तिक का मन, वाणी और क्रिया द्वारा पुष्कर तीर्थ का स्मरण करता है, उसे लाखों–करोड़ों गुणा पुण्य होता है।

माघ मास में प्रयाग, कार्तिक में पुष्कर और वैशाख मास में अवन्तीपुरी (उज्जैन)–ये एक युग तक उपार्जित किये हुए पापों का नाश कर डालते हैं। कार्तिकेय! संसार में विशेषतः कलियुग में वे ही मनुष्य धन्य हैं, जो सदा पितरों के उद्धार के लिये श्रीहरि का सेवन करते हैं। बेटा! बहुत से पिण्ड देने और गया में श्राद्ध आदि करने की क्या आवश्यकता है। वे मनुष्य तो हरि भजन के ही प्रभाव से पितरों का नरक से उद्धार कर देते हैं। यदि पितरों के उद्देश्य से दूध आदि के द्वारा भगवान् विष्णु को स्नान कराया जाए तो वे पितर स्वर्ग में पहुंच कर कोटि कल्पों तक देवताओं के साथ निवास करते हैं। जो कमल के एक फूल से भी देवेश्वर भगवान् लक्ष्मी पति का पूजन करता है, वह एक करोड़ वर्ष तक के पापों का नाश कर देता है। देवताओं के स्वामी भगवान् विष्णु कमल के एक पुष्प से भी पूजित और अभिवन्दित होने पर एक हज़ार सात सौ अपराध क्षमा कर लेते हैं।

हे षडानन! जो मुख में, मस्तक पर तथा शरीर में भगवान् की प्रसाद भूता तुलसी को प्रसन्नतापूर्वक धारण करता है, उसे कलियुग नहीं छूता। भगवान् विष्णु को निवेदन किये हुए प्रसाद से जिसके शरीर का स्पर्श होता है, उसके पाप और व्याधियां नष्ट हो जाती हैं। शंख का जल, श्री हरि को भक्तिपूर्वक अर्पण किया हुआ नैवेद्य, चरणोदक, चन्दन तथा प्रसाद स्वरूप धूप–ये ब्रह्म हत्या का भी पाप दूर करने वाले हैं।

इति पद्मपुराणे कार्तिक माहात्म्ये त्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥३० ॥



इकत्तीसवां अध्याय

भगवत्पूजन, दीपदान, यमतर्पण, दीपावली-कृत्य गोवर्धन-पूजा और यमद्वितीया के दिन करने योग्य कृत्यों का वर्णन

महादेव जी कहते हैं-जो प्रतिदिन मालती से भगवान् गरुड़ ध्वज का पूजन करता है, वह जन्म के दुःखों और बुढ़ापे के रोगों से छुटकारा पाकर मुक्त हो जाता है। जिसने कार्तिक में मालती की माला से भगवान् विष्णु की पूजा की है, उसके पापों को भगवान् श्रीकृष्ण धो डालते हैं। चन्दन, कपूर, अरगजा, केशर, केवड़ा और दीपदान भगवान् केशव को सदा ही प्रिय हैं। कमल का पुष्प, तुलसीदल, मालती, अगस्त्य का फूल और दीपदान-ये पांच वस्तुएं कार्तिक में भगवान् के लिए परम प्रिय मानी गई हैं।

हे कार्तिकेय! केवड़े के फूलों से भगवान् हृषीकेश का पूजन करके मनुष्य उनके परम पवित्र एवं कल्याणमय धाम को प्राप्त होता है। जो अगस्त्य के फूलों से जनार्दन का पूजन करता है, उसके दर्शन से नरक की आग बुझ जाती है। जैसे कौस्तुभमणि और वनमाला से भगवान् को प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार कार्तिक में तुलसीदल से वे अधिक सन्तुष्ट होते हैं।

हे कार्तिकेय! अब कार्तिक में दिये जाने वाले दीप का माहात्म्य सुनो। मनुष्य के पितर अन्य पितृगणों के साथ सदा इस बात की अभिलाषा करते हैं कि क्या हमारे कुल में भी कोई ऐसा उत्तम पितृभक्त उत्पन्न होगा, जो कार्तिक में दीपदान करके श्रीकेशव को सन्तुष्ट कर सके। हे स्कन्द! कार्तिक में घी अथवा तिल के तेल से जिसका दीपक जलता रहता है, उसे अश्वमेध यज्ञ से क्या लेना है। जिसने कार्तिक में भगवान् केशव के समक्ष दीपदान किया है, उसने सम्पूर्ण यज्ञों का अनुष्ठान कर लिया और समस्त तीर्थों में गोता लगा लिया। हे बेटा! विशेषतः कृष्ण पक्ष में पांच दिन बड़े पवित्र हैं। (कार्तिक कृष्णा १३ से कार्तिक शुक्ला २ तक) उनमें जो कुछ भी दान किया जाता है, वह सब अक्षय एवं सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है।

लीलावती वैश्या दूसरे के रखे हुए दीप को जलाकर शुद्ध हो अक्षय स्वर्ग को चली गयी। इसलिए रात्री में सूर्यास्त हो जाने पर घर में, गोशाला में, देव वृक्ष के नीचे तथा मन्दिरों में दीपक जलाकर रखना चाहिए। देवताओं के मन्दिरों में, श्मशानों में और नदियों के तट पर भी अपने कल्याण के लिए घृत आदि से पांच दिनों तक दीपक जलाने चाहिएं। ऐसा करने से जिनके श्राद्ध तर्पण नहीं हुए हैं, वे पापी पितर भी दीपदान के पुण्य से परम मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–भामिनि! कार्तिक के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी को घर से बाहर यमराज के लिए दीप देना चाहिए। इससे दुर्मृत्यु का नाश होता है। दीप देते समय इस प्रकार कहना चाहिए–हे 'मृत्यु', पाशधारी काल और अपनी पत्नी के साथ सूर्यनन्दन यमराज त्रयोदशी को दीप दान देने से आप प्रसन्न हों। कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को चन्द्रोदय के समय नरक से डरने वाले मनुष्यों को अवश्य स्नान करना चाहिए। जो चतुर्दशी को प्रातःकाल स्नान करता है, उसे यमलोक का दर्शन नहीं करना पड़ता।

अपामार्ग (ओंगा या चिचड़ा), तुम्बी (लौकी), प्रपुन्नाट (चकवड़) और कट्फल (कायफल)– इनको स्नान के बीच में मस्तक पर घुमाना चाहिए। इससे नरक के भय का नाश होता है। उस समय इस प्रकार प्रार्थना करे–'हे अपामार्ग! मैं हराई के ढेले, कांटे और पत्तों सहित तुम्हें बार-बार मस्तक पर घुमा रहा हूं। मेरे पाप हर लो।' यों कह कर अपामार्ग और चकवड़ को मस्तक पर घुमाये। तत्पश्चात यमराज के नामों का उच्चारण करके तर्पण करे। वे नाम-मन्त्र इस प्रकार हैं–

यमाय नमः, धर्मराजाय नमः, मृत्यवे नमः, अन्तकाय नमः, वैवस्वताय नमः, कालाय नमः, सर्वभक्तक्षयाय नमः, औदुम्बराय नमः, दध्नाय नमः, नीलाय नमः, परमेष्ठिने नमः, वृकोदराय नमः, चित्राय नमः, चित्रगुप्ताय नमः।

देवताओं का पूजन करके दीपदान करना चाहिए। इसके बाद रात्रि के आरम्भ में भिन्न-भिन्न स्थानों पर मनोहर दीप देने चाहिएं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि के मन्दिरों में, गुप्त गृहों में, देव वृक्षों के नीचे, सभा भवन में, नदियों के किनारे, चहारदीवारी पर, बगीचे में, बावली के तट पर, गली-कूचों में, गृहोद्यान में तथा एकान्त अश्वशालाओं एवं गजशालाओं में भी दीप जलाने चाहिए।

इस प्रकार रात व्यतीत होने पर अमावस्या को प्रातःकाल स्नान करे और भक्तिपूर्वक तथा पितरों का पूजन और उन्हें प्रणाम करके पार्वण श्राद्ध करे; फिर दही, दूध घी आदि नाना प्रकार के भोज्य पदार्थों द्वारा ब्राह्मणों को भोजन करा कर उनसे क्षमा-प्रार्थना करे। तदनन्तर भगवान् के जागने से पहले स्त्रियों के द्वारा लक्ष्मी जी को जगाये। जो प्रबोधकाल (ब्राह्ममुहूर्त) में लक्ष्मी जी को जगाकर उनका पूजन करता है, उसे धन-सम्पत्ति की कमी नहीं होती। तत्पश्चात् प्रातःकाल (कार्तिकशुक्ला प्रतिपदाको) गोवर्धन का पूजन करना चाहिए। उस समय गौओं तथा बैलों को आभूषणों से सजाना चाहिए। उस दिन उनसे सवारी का काम नहीं लेना चाहिए तथा गायों को दुहना भी नहीं चाहिए। पूजन के पश्चात् गोवर्धन से प्रार्थना करे-

'पृथ्वी को धारण करने वाले हे गोवर्धन! आप गोकुल के रक्षक हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने आपको अपनी भुजाओं पर उठाया था। आप मुझे कोटि-कोटि गौएं प्रदान करें। लोकपालों की जो

लक्ष्मी धेनु रूप में स्थित हैं और यज्ञ के लिए घृत प्रदान करती हैं, वह मेरे पाप को दूर करे। मेरे आगे गौएं रहें, मेरे पीछे गौएं रहें मेरे हृदय में गौओं का निवास हो तथा मैं भी गौओं के बीच में निवास करूं।'

कार्तिक शुक्ल पक्ष की द्वितीया को पूर्वाह्न में यम की पूजा करे। यमुना में स्नान करके मनुष्य यमलोक को नहीं देखता। कार्तिक शुक्ला द्वितीया को पूर्वकाल में यमुना ने यमराज को अपने घर पर सत्कारपूर्वक भोजन कराया था। उस दिन नारकी जीवों को यातना से छुटकारा मिला और उन्हें तृप्त किया गया। वे पाप मुक्त होकर सब बन्धनों से छुटकारा पा गए और सब के सब यहां अपनी इच्छा के अनुसार संतोषपूर्वक रहे। उन सब ने मिलकर एक महान् उत्सव मनाया, जो यमलोक के राज्य को सुख पहुंचाने वाला था। इसीलिए यह तिथि तीनों लोकों में यमद्वितीया के नाम से विख्यात हुई।

अतः विद्वान पुरुषों को उस दिन अपने घर भोजन नहीं करना चाहिए। वे बहिन के घर जाकर उसी के हाथ से मिले हुए अन्न को, जो पुष्टिवर्धक है, स्नेहपूर्वक भोजन करें तथा जितनी बहिनें हों, उन सब को पूजा और सत्कार के साथ विधिपूर्वक सुवर्ण, आभूषण एवं वस्त्र दें। सगी बहिन

के हाथ का अन्न भोजन करना उत्तम माना गया है। उसके अभाव में किसी भी बहिन के हाथ का अन्न भोजन करना चाहिए। वह बल को बढ़ाने वाला है। जो लोग उस दिन सुवासिनी बहिनों को वस्त्र-दान आदि से सन्तुष्ट करते हैं, उन्हें एक साल तक कलह एवं शत्रु के भय का सामना नहीं करना पड़ता। यह प्रसंग धन, यश, आयु, धर्म, काम एवं अर्थ सिद्धि करने वाला है।

इति श्रीपद्म पुराणे कार्तिक माहात्म्ये एकत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥

इति कार्तिक माहात्म्यं सम्पूर्णम् ॥





CK Graphics